Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

भारतीय समाज के नवनिर्माण में उद्योग व कृषि की भूमिका

डॉ. शक्ति सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर,समाजशास्त्र विभाग
गनपत सहाय पी.जी. कालेज
सुलतानपुर(उ.प्र.)

आधुनिक युग में विश्व का प्रत्येक राष्ट्र, चाहे वह विकसित हो या अर्द्धविकसित हो, औद्योगिकरण की गति को तेज करने के लिये पूर्णरूप से जागरूक है। विश्व में आज वही राष्ट्र समृद्धिशाली तथा अग्रगामी समझा जाता है जो औद्योगिक रूप से अत्यन्त सबल और समर्थ है। प्रायः सभी देश औद्योगिक विकास को अपनी आर्थिक नीति का एक प्रमुख अंग बना चुके है, जहां तक भारत का प्रश्न है,यह देश भी औद्योगिकरण की दिशा में काफी प्रगति कर रहा है।

जैसा हम सभी जानते है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी अर्थव्यवस्था कृषि व्यवस्था पर अधिकांश रूप से निर्भर है। कृषि का भारतीय अर्थशास्त्र के सकल घरेलू उत्पाद में 14 प्रतिशत योगदान है, लेकिन लगातार हमारी अर्थशास्त्र में कृषि का योगदान घट रहा है। 1950 के दशक में हमारी अर्थशास्त्र में कृषि का योगदान 53 प्रतिशत था, जो वर्तमान में करीब 14 प्रतिशत रह गया है।

किसी भी देश के आर्थिक विकास के दो अंग होते हैं- 1. कृषि 2. उद्योग। ,क्योंकि उद्योगों की तुलना में कृषि के विकास की दर प्रमुख रूप से उसकी औद्योगिक उन्नति पर ही निर्भर रहती है, और औद्योगिक उन्नति में यह आवश्यक हो जाता है कि देश के प्राकृतिक और आर्थिक साधनों का विदोहन किया जाये।

भारतीय समाज में उद्योगों की स्थापना की आवश्यक उस दौर में पैदा हुई जब ब्रिटेन में वित्त पूँजी का आरम्भ हुआ। इस विदेशी पूँजी की भूमिका के कारण भारत में नवीन उद्योंगों की स्थापना होनी प्रारम्भ हो गयी साथ ही भारत का महत्व अब मण्डी , कच्चे माल के स्रोत के साथ ही पूँजी निवेश के क्षेत्र के रूप में बढता चला गया।

इस प्रकार भारत में जो आधुनिक उद्योग आरम्भ हुए उन्हें विदेशी उद्योग तथा घरेलू उद्योग की दो अलग-अलग श्रेणियों में रखा जा सकता है जो भारत में नई पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के आधार थे। पूँजीवादी पद्धति पर आधारित इन उद्योगों के विकास का इतिहास अध्ययन की सुविधा के लिए तीन चरणों मे विभाजित किया जा सकता है-

विकास का प्रथम चरण 1914 ई० तक रहा। इस दौर के विकास की विशेषता यह है कि इस काल में एक ओर तो निर्यात योग्य माल पैदा किया गया, दूसरी ओर घरेलू पूँजी ने उस क्षेत्र में कार्य करना आरम्भ किया जहाँ विदेशी पूँजी के साथ किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्वता नहीं थी। निर्यात योग्य माल का उत्पादन बागान उद्योग के रूप में हुआ। नील, चाय, कॉफी के आधुनिक ढंग के उत्पादन को ब्रिटिश पूँजी के द्वारा आरम्भ किया गया। इसी के द्वारा जूट मिलों की भी स्थापना हुई। कोयला खनन उद्योग भी विदेशी पूँजी से आरम्भ हुआ। 1880–95 ई० के काल में पहले से स्थापित उद्योगों का और अधिक विस्तार हुआ। 1914 ई० तक सूती व जूट मिलों की संख्या बढ़कर क्रमशः 264, 641 हो गई। कोयला खनन का उत्पादन 6 गुना बढ़ गया। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि 1890–1914 ई० के मध्य पेट्रोलियम, मैगनीज, सीसा जैसे नये खनिज उद्योग आरम्भ हो गये। इस काल के विकास की मुख्य कमजोरी थी, भारी उद्योगों का पूर्णतः अभाव होना।

आर० सी० दत्त ने इस कमजोरी को रेखांकित करते हुए लिखा- ''अभियंत्रण के नाम पर केवल कुछ मरम्मत करने की दुकानें थीं, खासकर रेलवे के लिए प्रथम विश्व युद्ध (1914 ई०) से पूर्व लोहा और इस्पात उद्योग की मामूली सी शुरूआत भर हुई थी, मशीनों का उत्पादन नहीं था।'' लोहा और इस्पात के क्षेत्र में कदम रखने वाले

प्रथम भारतीय पूँजीपति जमशेदजी टाटा थे जिन्होंने 1907 ई० में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (TISCo.) की स्थापना की। इसी तरह ऊर्जा के क्षेत्र में भी 1910 ई० में टाटा हाइड्रो इलेक्ट्रीकल पॉवर सप्लाई कम्पनी स्थापित की। इस दौर में उद्योगों का विकास एकांगी व मन्द गति से होने का मुख्य कारण था ब्रिटिश सरकार द्वारा उद्योगों के विकास में सहायता देने, शिशु उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने जैसे कदम न उठाकर उनके प्रति उपेक्षा और भेदभाव की नीति का पालन करना। इसके साथ ही तकनीकी शिक्षा का विकास न होने के कारण देश में तकनीशियनों का अभाव था जिसका प्रभाव उद्योगों के विकास पर पड़ा।

बैंकिंग उद्योग का विकास, विशेषकर ज्वाइन्ट स्टॉक बैंकों की भारतीय पूँजी से स्थापना इस काल के विकास की एक प्रमुख विशेषता रही। बैंकिंग व्यवस्था का यह विकास भविष्य के तीव्र औद्योगिक विकास के लिए बहुत जरूरी था।

1914–37 ई० का काल आधुनिक उद्योगों के विकास का **दूसरा** चरण था। इस काल में भारतीय उद्योगों को विकास करने के लिए नये अवसर प्राप्त हुए। युद्ध के दौर में विदेशों का माल भारत में न आ सका। अतः विदेशी माल की प्रतियोगिता से भारतीय उद्यम बच गये। युद्धजन्य विवशता के कारण भारत के कई उद्योगों को प्रोत्साहन एवं संरक्षण देना ब्रिटिश सरकार की मजबूरी बन गई। युद्ध के कारण भारतीय पूँजीपति को न केवल घरेलू बाजार मिला, अपितु विदेशी बाजार में भी उसके माल की खपत बढ़ी युद्ध के दौरान मिले ठेकों से होने वाले लाभ ने पूँजी को बढ़ाया तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उत्पन्न बाधा के कारण घरेलू उत्पादन के लिए कच्चा माल सस्ता और पर्याप्त मात्रा में मिलने लगा। इसके साथ ही युद्धजन्य मँहगाई ने पूँजीपतियों को ऊँची कीमत पर माल बेच कर लाभ कमाने का मौका दिया।

इन अनुकूल परिस्थितियों के कारण इस काल में उद्योगों का अपेक्षाकृत तीव्र विकास होना स्वाभाविक था। 1916 ई० में सरकार द्वारा थॉमस हॉलैण्ड के नेतृत्व में भारतीय औद्योगिक आयोग की स्थापना की गयी। 1918 ई० में अपनी रिपोर्ट में आयोग ने सुझाव दिया कि सरकार भारत के औद्योगीकरण को प्रोत्साहन दे, निजी उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक होने पर सीधी आर्थिक सहायता दे, औद्योगिक बैंकों की स्थापना करे तथा तकनीकी शिक्षा एवं शोधकार्य को विकसित करे। 1921 ई० में नियुक्त वित्त आयोग ने उद्योगों के विकास के लिए विवेकपूर्ण संरक्षण देने की नीति अपनाने का सुझाव दिया। इस रिपोर्ट के आधार पर गठित टैरिफ बोर्ड ने अगले १६ वर्षों (1923–39 ई०) में आयरन एण्ड स्टील, चीनी, कागज, सूती कपड़ा, दियासलाई, नमक, जरी, गेहूँ और चावल के विविध उत्पाद तथा भारी रासायनिक पदार्थ आदि ११ उद्योगों को संरक्षण दिया। उद्योगों के विकास को दृष्टि में रखते हुए "Central Bureau of Industries, Intelligence and Research" की स्थापना की गयी।

अनुकूल परिस्थितियों एवं सरकार की उपर्युक्त नीतियों के चलते इस चरण में उद्योगों ने उल्लेखनीय प्रगति की, लेकिन इस प्रगति के बावजूद इस दौर का विकास न तो संतुलित था और न ही सर्वांगीण। इस विकास की कमजोरी तथा विशिष्टता को रेखांकित करते हुए वाडिया तथा मर्चेंट ने 1936 ई० में लिखा- "चीनी, सूती सामान, लोहा और इस्पात के मामले में हम विदेशों पर निर्भर नही हैं, लेकिन अपने कच्चे माल की खपत के लिए हमें विदेशों का ही सहारा लेना है। इन सबसे अधिक महत्व का तथ्य यह है कि मशीनरी एवं बड़ी पूँजी वाले सामान के लिए हम अभी भी विदेशों पर आश्रित हैं। इनके बिना नये उद्योगों की स्थापना असम्भव है।" इस चरण के औद्योगिक विकास के बाद भी जनसंख्या का अधिकांश भाग अब भी कृषि पर निर्भर रहा। इसीलिए कहा गया कि "भारत के उद्योगों का आधुनिकीकरण शुरू हो गया है, लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि उसका औद्योगीकरण हो चुका है।"

विकास के इस द्वितीय चरण में भारतीय उद्योगों को बाधाओं का भी सामना करना पड़ा। 1927 ई० से सरकार की सीमा शुल्क नीति 'साम्राज्यवादी प्राथमिकता' की नीति में बदल गई। इसके अन्तर्गत ब्रिटिश उद्योगों को

सरकारी सहायता दी गयी, ताकि वह भारत के बाजार में भारतीय माल से होड़ कर सके। ''यह भारत को 1914 ई० के युद्ध से पहले की स्थिति में वापस पहुँचाने का एक सार्थक प्रयत्न था।'' सरकार की मुद्रा नीति ने भी भारतीय उद्योगों के हितों पर कुठाराघात किया। भारतीय विरोध के बावजूद रूपये की विनियम दर को 1 शिलिंग 6 पेंस के स्थान पर 1 शिलिंग 4 पेंस कर दिया गया। भारतीय पूँजीपति वर्ग के प्रमुख नेता पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के अनुसार, ''इससे भारतीय उत्पादक को बहुत अधिक क्षति पहुँचेगी जिसे वह सहन नहीं कर सकेगा।''

अन्त में, 1929–33 ई० के विश्वव्यापी आर्थिक संकट का भी भारत के उद्योगों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। प्रमिला सूरी के अनुसार, ''इस संकट के चलते 1931–35 ई० के बीच 3.2 करोड़ अरब औंस सोना भारत से बाहर गया। 1936–37 ई० में भारत की जनता के सोने के खजाने में कमी हुई और इससे औद्योगिक सामान की खरीद में कमी हुई।''

उद्योगों के विकास के इस चरण में उद्योगों के क्षेत्र में ब्रिटिश पूँजी की पकड़ और वर्चस्व में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली के द्वारा विदेशी पूँजीपति अनेक उद्योगों पर अपना नियंत्रण बनाये रखने तथा उनका लाभ स्वयं हासिल करने में सफल रहे। इन विदेशी एजेन्सियों में एडचूल एण्ड कम्पनी तथा जॉर्डन एण्ड स्किनर कम्पनी सबसे ज्यादा पुरानी एवं आर्थिक रूप से शक्तिशाली थी। विदेशी कम्पनियों ने भारत में अपनी उपकम्पनियाँ स्थापित की तथा उनके माध्यम से उद्योगों को नियंत्रित किया। ''इन विदेशी इंडिया लिमिटेड कम्पनियों (लीवर ब्रादर्स, डनलप आदि) ने न केवल बड़े उद्योगों का सामना किया, बल्कि भारत के लघु उद्योगों के लिए भी खतरा पैदा कर दिया।'' तीसरे भारत की बैंकिंग व्यवस्था पर ब्रिटिश पूँजी का नियंत्रण था तथा इन बैंकों ने विदेशी पूँजीपति के साथ पक्षपात करने की नीति अपनाई।

भारत में उद्योगों के विकास का तीसरा चरण द्वितीय विश्व युद्ध का समय रहा। इस दौर के आर्थिक इतिहास की मुख्य विशेषताएँ दो हैं। **पहली**, ब्रिटिश शासन ने भारत की उत्पादन क्षमता को बहुत अधिक हानि पहुँचायी। यह कार्य राज्य की भारत विरोधी नीतियों एवं कानूनों, इजारेदारियों तथा खजाने की लूट के माध्यम से किया गया। **दूसरे** इस दौर में भारतीय पूँजी तथा विदेशी पूँजी के मध्य का अन्तर्विरोध भी पहले की तुलना में कहीं अधिक तेज और तीखा हो गया।

यह होने पर भी इस युद्ध के दौरान भारत में उद्योगों का विकास हुआ। इस प्रकार युद्धकालीन विकास ने वास्तव में ''न केवल उत्पादक शक्तियों और मुख्य स्रोतों के आधार-कारीगर के अनुभव और कौशल को चूस लिया वरन् युद्ध के दौरान मशीनों का अधिक प्रयोग करके मशीनों को भी नष्ट कर दिया।''

उत्पादन की शक्ति के इस तरह नष्ट किये जाने के कारण ही एक सर्वेक्षण में चिन्ता व्यक्त की गई थी कि हिन्दुस्तान के सामने युद्धोत्तर खतरा है औद्योगिक विघटन का। भारत में इंजीनियरिंग उद्योग, विमान उद्योग, मशीन-निर्माण उद्योग जैसे महत्वपूर्ण तथा बुनियादी उद्योगों की स्थापना को ब्रिटिश सरकार द्वारा जानबूझकर रोका गया। यहाँ तक कि विदेशों से उन मशीनों को मँगाने पर रोक लगाई गई जो भारत में बुनियादी तथा भारी उद्योगों की स्थापना में सहायक सिद्ध हो सकती थी। भारत के औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति की आलोचना करते हुए ईस्टर्न इकोनॉमिस्ट ने लिखा कि ''हमारी न कोई पद्धति थी न कोई योजना-परन्तु एक योजना स्पष्ट रूप से यह थी कि युद्ध के बाद देश का औद्योगीकरण किस प्रकार रोका जाए।''

आज भारत एक अल्पविकसित देश है। संसार में प्रतिव्यक्ति आय की दृष्टि से इसका स्थान बहुत नीचा है। यह स्थिति तो स्वतंत्रता के 74 वर्ष बाद है। आजादी के समय यहाँ का आर्थिक ढांचा वर्तमान की तुलना में बहुत कमजोर था और प्रतिव्यक्ति आय और भी कम थी। बुनियादी उद्योगों का बिल्कुल विकास नहीं था। भारी इंजीनियरिंग, मशीनी औजार तथा रासायनिक उद्योग तो विकसित थे ही नहीं, लगभग 72 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर थे। कृषि पर जनसंख्या के भारी दबाव के कारण प्रच्छन्न/गुप्त बेरोजगारी थी। द्वितीयक (secondary) क्षेत्र

में जिसमें विनिर्माण-उद्योग (manufacturing industries) आते हैं केवल 10.62 प्रतिशत और तृतीयक (tertiary) या सेवाक्षेत्र में 17.26 प्रतिशत लोगों के पास रोजगार था। राष्ट्रीय आय का स्तर नीचा होने के कारण प्रतिव्यक्ति पूँजी की मात्रा कम और अधिकांश लोगों की बचत शून्य थी। थोड़े से व्यक्तियों को छोड़कर सभी लोग अपनी आय का बड़ा भाग खाद्य-पदार्थों पर व्यय करते थे। व्यापार अविकसित और साख सुविधाएँ सीमित थीं। कुशलता का स्तर नीचा होने के साथ-साथ प्रौद्योगिकी स्तर नीचा था।

अंग्रेजी शासनकाल में यहाँ की अर्थव्यवस्था पूरी तरह गतिहीन थी। आजादी के बाद यह गतिहीनता समाप्त हुई है। आजादी मिलते ही इस देश में आर्थिक आयोजन की शुरूआत हुई जिसके फलस्वरूप यहाँ पर विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला। आजादी के बाद भारत में मात्रात्मक दृष्टि से संवृद्धि के अलावा महत्वपूर्ण ढांचागत परिवर्तन हुए हैं जो विकास की प्रक्रिया को समझने में सहायक हैं। और आज भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्व-पूँजीवादी (Pre-Capitalist) न होकर मिश्रित है जिसमें सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों की महत्वपूर्ण भूमिकाएं हैं।

सन्दर्भ - ग्रन्थ सूची

1. चोपड़ा,पी.एन./पुरी,बी.एन./दास,एम.एन.- भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास (Vol.3), मैकमिलन इंडिया लि., नई दिल्ली, पुनर्मुद्रणः 1985।
2. पन्त, जे. सी. एवं सेठ, एम. एल.- आर्थिक विचारों का इतिहास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पुनः मुद्रितः 1999–2000।
3. मोरलैण्ड, डब्ल्यू. एच. - फ्रॉम अकबर टु औरंगजेब, ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लि., प्रथम संस्करण (हिन्दी), नई दिल्ली, 1997।
4. वर्मा, वी. पी.- आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003।
5. वैश्य, एम. सी.- आर्थिक विचारों का इतिहास, एस. चन्द. एण्ड कं. लि., नई दिल्ली, 1993।
6. शर्मा, वीरेन्द्र- आधुनिक भारतीय राजनैतिक विचारधाराएँ, श्री पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1994।
7 एस्कैप रिपोर्ट ऑफ वर्किंग कमेटी ऑन पब्लिक सर्विस डिलेवरी सिस्टम्स फॉर रूरल पूअर : एस्कैप एण्ड गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, 1979।
8 इन्टीग्रेटेड रूरल डेवलपमेन्ट एप्रोच स्ट्रेटजी एण्ड पर्सपेक्टिव, एस. के. शर्मा एण्ड एस. आई. मेहरोत्रा।
9 रूरल डेवलपमेन्ट सेक्टर पॉलिसी पेपर ऑफ आई. बी. आर. डी., 1975।
10 ए. आर. देसाई, रूरल इण्डियन एनट्रांजीशन बाम्बे, पापुलर बुक डिपो, 1961।
11 रोल ऑफ रूरल इण्डस्ट्रीज इन रूरल डेवलपमेन्ट : एच. दाण्डेकर एण्ड एस. ब्रह्मा : रूरल एरिया डेवलपमेन्ट एडिशन बाई आर. पी. मिश्रा।
12 रूरल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया : ए रिसर्च सर्वे।
13 रूरल डेवलपमेन्ट एण्ड रूरल पूअर, अशोक मेहता, कामर्स, 1980।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एवं नारी विमर्श

डॉ0 भारती रस्तोगी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रस्तावना

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक उन्नति के प्रबल पक्षधर थे। वे गौतम बुद्ध तथा महात्मा ज्योतिबाराव फुले से अत्यधिक प्रभावित थे। बुद्ध धम्म में महिलाओं को धर्म दीक्षा का अधिकार प्राप्त रहा है तथा इस धर्म में स्त्री–पुरुष समानता के उपदेश दिए जाते हैं। महात्मा फुले ने 19वीं शताब्दी में महिलाओं की शिक्षा के लिए ऐतिहासिक कार्य किये। डॉ0 अम्बेडकर महात्मा फुले को अपना गुरु मानते थे। वे मानते थे कि किसी भी समाज का मूल्यांकन इस बात से किया जाता है कि उस समाज में महिलाओं की क्या स्थिति है ? आजाद भारत के पहले कानून मन्त्री के रूप में अम्बेडकर ने महिला सशक्तीकरण के लिए कई कदम उठाए। उन्होंने बताया कि मनु से पूर्व भारत में महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक थी। मनु ने देश की महिलाओं की स्थिति को अत्यधिक दयनीय व चिन्ताजनक बना दिया। आधुनिक युग में डॉ0 अम्बेडकर ने महिलाओं को जागृत करने के लिए अनेक सम्मेलन किये। उन्होंने '**मूकनायक**' व '**बहिष्कृत भारत**' इत्यादि समाचार–पत्रों के माध्यम से महिलाओं को उनके अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। बाबा साहेब का मानना था कि सही मायने में प्रजातन्त्र तब आएगा जब महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में बराबरी का हिस्सा मिलेगा और उन्हें विश्वास था कि महिलाओं की उन्नति तभी सम्भव होगी जब उन्हें घर–परिवार और समाज में सामाजिक बराबरी का दर्जा मिलेगा। शिक्षा और आर्थिक उन्नति उन्हें सामाजिक बराबरी दिलाने में मदद करेगी।

महिला सशक्तीकरण को लेकर अम्बेडकर जी की जुनूनी लड़ाई 1942 में शाषित वर्ग की महिलाओं के एक सम्मेलन में देखने को मिली जब उन्होंने कहा था कि 'किसी समुदाय की प्रगति महिलाओं की प्रगति से आंकी जाती है।' उनके यही शब्द उन्हें नारीवाद के समर्थक के रूप में स्थापित करते हैं। बाबा साहेब का मानना था कि आजादी मिल जाने के बाद भी यदि '**आधी आबादी**' अर्थात् महिलायें शोषण तथा दमन की शिकार रहीं तो भारतीय समाज का विकास सम्भव नहीं है। जातिगत विषमताओं से तो वे पीड़ित तथा आहत थे ही परन्तु महिलाओं से सम्बन्धित गम्भीर चिन्ताएँ भी उनको परेशान करती थीं जैसे भारत की पितृसत्तात्मक व्यवस्था में महिलाओं का निम्न स्तर, महिलाओं का स्थान पुरुषों से निम्न होना, बेटियों के प्रति उपेक्षा तथा हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में स्त्रियों को हीन नजर से देखना इत्यादि। अम्बेडकर ने महिला सशक्तीकरण के रूप में प्राचीन 'मनुस्मृति' का दहन किया। वह केवल उपदेश देने में विश्वास नहीं रखते थे बल्कि उन्होंने हिन्दू कोड बिल लाकर बेजोड़ मिसाल कायम की, जब यह बिल संसद में पेश किया गया तब इसे लेकर संसद के अन्दर और बाहर विद्रोह मच गया। सनातनी धर्मावलम्बी से लेकर आर्य समाजी तक अम्बेडकर के विरोधी हो गए। संसद में जहाँ जन संघ समेत कांग्रेस के हिन्दूवादी इसका विरोध कर रहे थे तो वहीं संसद के बाहर हरिहरानन्द सरस्वती के नेतृत्व में बड़ा प्रदर्शन चल रहा था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, हिन्दू महासभा और दूसरे हिन्दूवादी संगठन हिन्दू कोड बिल का विरोध रहे थे। इन सबके बावजूद अम्बेडकर लड़ते रहे। हिन्दू कोड बिल औपचारिक रूप से 5 फरवरी 1951 को पेश किया था। यह बिल हिन्दू स्त्रियों की उन्नति के लिए प्रस्तुत किया गया था। हिन्दू विवाह अधिनियम,

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, हिन्दू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम और हिन्दू दत्तक और रख–रखाव अधिनियम 1952 और 1956 के बीच पारित किए गए थे। प्रस्तुत प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य वैदिक काल से आधुनिक युग तक भारत में व्याप्त लैंगिक भेदभाव पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए महिला संशक्तीकरण प्राप्त करने में डॉ0 अम्बेडकर के योगदानों का उल्लेख करना है। यह पत्र द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है जिसमें पुस्तकों, पत्रिकाओं, जर्नल्स तथा वेबसाइट्स पर उपलब्ध साहित्य का अध्ययन किया गया है।

भारत में व्याप्त लैंगिक भेदभाव

भारतीय समाज में प्राचीन व्यवस्था के अन्तर्गत नारियों को उच्च प्रस्थिति प्राप्त थी। मनु से पूर्व नारियों को बहुत सम्मान दिया जाता था। अथर्ववेद से स्पष्ट होता है कि नारी को अपने उपनयन का अधिकार प्राप्त था। श्रौत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि नारी वेदमन्त्रों का अनुपाठ कर सकती थी और उसे वदों का अध्ययन करने की शिक्षा दी जाती थी। पतंजलि के महाभाष्य का कहना है कि नारियाँ शिक्षक होती थीं और बालिकाएँ वेदों का अध्ययन करती थीं। धर्म आध्यात्म और तत्व मीमांसा के कठिन से कठिन विषयों पर पुरुषों के साथ नारियों के शास्त्रार्थ करने के प्रसंग भी कम नहीं मिलेंगे। जनक और सुलभ, याज्ञवल्क्य और गार्गी, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी तथा शंकराचार्य और विद्याधरी के बीच शास्त्रार्थ की घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि मनु के पूर्व नारियाँ शिक्षा और ज्ञान के उच्च शिखर पर पहुँच चुकी थीं (चतुर्वेदी, 2004)। इस काल में नारियों को सुख, वैभव, शान्ति, शक्ति और ज्ञान का प्रतीक माना जाता था परन्तु धीरे–धीरे नारियों के स्थान में परिवर्तन होता गया। पुरुषों ने नारियों को दुर्बल समझकर उनके अधिकार और कार्य–सीमा पर हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। एक समय ऐसा आया जब नारी को मनुष्य न समझकर वस्तु समझा जाने लगा। हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि समस्त मानव जाति की जननी नारी की स्वयं की सामाजिक प्रस्थिति पशुतुल्य रह गयी। इसके स्पष्ट प्रमाण तुलसीदास जी द्वारा रचित '**रामचरितमानस**' में मिलते हैं जिसके 'सुन्दरकाण्ड' में स्पष्ट लिखा है कि ढोल, गंवार, शूद्र, पशु नारी यह सब ताड़न के अधिकारी। इसी प्रकार के साक्ष्य महाभारत में मिलते हैं जिसमें द्रौपदी को एक साथ पाँच पतियों की पत्नी बना दिया गया। यही नहीं स्वयं उनके ही पति यूधिष्ठिर जिन्हें धर्मराज कहा जाता था, ने अपनी पत्नी द्रौपदी को जुएँ में दांव पर लगा दिया था।

मनुस्मृति के अध्ययन से पता चलता है कि मनु शूद्रों के प्रति जितना अनुदार था स्त्रियों के प्रति भी उसके विचार उतने ही अनुदार थे। मनु ने नियम बनाया कि कन्या, नवयुवती या वृद्धा को अपने घर में भी कोई काम स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं करना चाहिए। स्त्री को बचपन में अपने पिता, युवावस्था में अपने पति और जब उसका पति दिवंगत हो जाए तब अपने पुत्रों के अधीन रहना चाहिए। मनु के नियमों के अन्तर्गत स्त्री को शारीरिक दण्ड दिया जा सकता है और मनु पति को अपनी पत्नी को मारने–पीटने की अनुमति देता है। वह कहता है स्त्री, पुत्र, दास और सहोदर यदि अपराध करें तब रस्सी से या बाँस की छड़ी से मारना चाहिए। मनुस्मृति में स्त्री का स्थान शूद्र समान माना गया है। स्त्रियों के लिए वेद का अध्ययन, मनु द्वारा उसी प्रकार निषिद्ध है जिस प्रकार शूद्र को। स्त्रयों को कोई बौद्धिक कार्य नहीं करना चाहिए। पति चाहे सदाचार से हीन हो, या वह अन्य में आसक्त हो या वह सद्गणों से हीन हो, तो भी पतिव्रता स्त्री के द्वारा पति देवता के समान पूजित होता है। स्त्री को अपने पति को सदा प्रसन्न रखना चाहिए। उसे गृह कार्य में चतुर, घर के बर्तनों को स्वच्छ रखने में सावधान तथा खर्च करने में मितव्ययी होना चाहिए (हसनैन, 2004)। भारत में महिलाओं की प्रस्थिति का संक्षिप्त अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

वैदिक काल

इस युग में महिलाओं को परिवार एवं समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उन्हें, शिक्षा, विवाह, धर्म आदि क्षेत्रों में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। विधवाएँ पुनर्विवाह कर सकती थीं। नारियों में पर्दा प्रथा नहीं थी और वे घर के बाहर आ जा सकती थीं।

उत्तर वैदिक काल

इस काल में नारियों की स्थिति में ह्रास दिखाई देने लगा। धर्म–सूत्रों मे बाल विवाह का निर्देश दिया गया जिससे उनकी शिक्षा में बाधा पहुँची। बाल विवाह के कारण नारी गृहस्वामिनी एवं पति की सखा होने की आशा नहीं करती थी। शिक्षा के अभाव के कारण वह वेदपाठ नहीं कर सकती थी। धीरे–धीरे उन पर अनेक निषेध लगा दिये गये। इससे उनकी प्रस्थिति काफी निम्न हो गयी।

स्मृति युग

इस युग में नारियों की प्रस्थिति में गिरावट स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी। उनका जो कुछ भी सम्मान था वह केवल माता के रूप में, न कि पत्नी के रूप में। स्मृतिकारों ने निर्देश दिया कि नारी को किसी भी रूप में स्वतन्त्र नहीं रहने देना चाहिए। इस युग में विधवा पुनर्विवाह पर निषेध लगया गया। सती प्रथा इसी युग से प्रारम्भ हुई।

मध्यकालीन युग

मध्य काल में महिलाओं की स्थिति में और अधिक गिरावट आ गयी। नारी शिक्षा का प्रायः लोप हो गया। पर्दा प्रथा प्रारम्भ हो गयी। विधवा से पुत्र की संरक्षिका होने का अधिकार भी छिन गया। महिलाओं की स्थिति एक वस्तु के समान हो गयी जिसे पुरुष अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार से प्रयोग में ला सकता था।

आधुनिक युग

महिलाओं की यह स्थिति 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक उसी प्रकार बनी रही। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में पुनर्जागरण की लहर आयी। सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों के निवारण हेतु सामाजिक आन्दोलन हुए। इस युग में महिला साक्षरता भी तेजी से बढ़ी है और बढ़ रही है स्त्रियों का सभी व्यवसायों में प्रवेश स्वीकार्य हुआ है। वर्तमान में भारत की महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गयी हैं। इन सबके बावजूद संवैधानिक और कानूनी तौर पर महिलाओं की प्रस्थिति और भूमिका तथा सामाजिक परम्पराओं द्वारा थोपी गयी प्रस्थितियों और भूमिकाओं में अन्तर का प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे देश में महिलाओं की निम्न सामाजिक स्थिति है। पितृसत्तात्मक मूल्यों पर आधारित होने के कारण महिलाओं की अच्छी आज्ञाकारी और त्याग करने वाली बेटी, बहू और पत्नी के रूप में ही सामाजिक स्वीकार्यता है। उन्हें सामाजिक रीति–रिवाजों व समाजीकरण के माध्यम से इस प्रकार ढाला जाता है कि वे सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत होने वाली असमानताओं, अधीनता और शोषण का विरोध न करें।

डॉ0 अम्बेडकर भारत में महिलाओं के शोषण एवं उनकी निम्न स्थिति से अत्यन्त असन्तुष्ट थे। वे महिलाओं की इस सोचनीय स्थिति का कारण 'मनुस्मृति' एवं **चतुर्वर्णों** को मानते थे जिसने भारतीय नारी को शूद्रों के वर्ग में लाकर खड़ा कर दिया था। अम्बेडकर साहेब महिलाओं के प्रति हो रहे अत्याचारों के विरोध में लड़े। वे उन्हें पुरुषों के समान प्रस्थिति एवं अधिकार दिलाना चाहते थे। वे महात्मा ज्योतिबा फूले से अत्यधिक प्रभावित थे जिन्होंने आजीवन महिलाओं की पदोन्नति के प्रयास

किये। अम्बेडकर ने नारी सम्बन्धी अपने विचार जिन लेखें में प्रस्तुत किए वे इस प्रकार हैं–1) दि वूमेन एण्ड द काउण्टर रिवोल्यूशन तथा 2) दि रिडिल ऑफ दि वूमेन।

महिलाओं के उत्थान के लिए अम्बेडकर के प्रयास

लिंगभेद और महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार भारतीय समाज का घिनौना चेहतरा है। यदि हम इस समस्या की गहराई में झाँके तो हम पाते हैं कि महिलाओं के विरुद्ध अत्याचारों के लिए मुख्यतयः भेदभाव मूलक वातावरण ही जिम्मेदार है। पितृसत्तात्मक समाज में सर्वत्र विद्यमान पुरुष प्रधानता के वातावरण ने स्त्रियों और पुरुषों के बीच असमान शक्ति सम्बन्ध स्थापित किया है। डॉ0 अम्बेडकर तो महिलाओं की निम्न स्थिति के लिए मनुस्मृति को ही उत्तरदायी मानते हैं। उनका मानना है कि हिन्दू धर्म के अनुयाइयों ने अपनी ही माताओं, बहनों और पत्नियों के लिए समाज में जो प्रस्थिति चुनी उसके लिए समस्त हिन्दू जाति का सर शर्म से झुक जाना चाहिए। अम्बेडकर का विचार था कि समाज का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है जब समाज में जातिगत एवं धार्मिक भेद–भाव, ऊँच–नीच का भेद–भाव एवं लिंग सम्बन्धी पक्षपात इत्यादि न हो। समाज के कमजोर वर्ग के उद्धार के लिए उनका नारा था– एकता, शिक्षा एवं विद्रोह। वे मानते थे कि उच्च शिक्षा प्राप्त किए बिना शोषित वर्ग उच्च जाति से सम्बन्धित व्यक्तियों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पायेगा। इसी उद्देश्य से उन्होंने 1945 में 'पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी' की स्थापना की। इसी क्रम में उन्होंने बम्बई में सिद्धार्थ कॉलेज तथा औरंगाबाद में मिलिन्द कॉलेज की स्थापना की। अम्बेडकर का दृढ़ विश्वास था कि महिलाओं को साथ लिए बिना एकता का कोई मतलब नहीं, महिलाओं को शिक्षित किए बिना शिक्षा के प्रसार का कोई महत्व नहीं तथा महिलाओं के सहयोग के बिना हर विद्रोह अधूरा है। इसीलिए हम महिलाओं के मूलभूत अधिकारों की उपेक्षा नहीं कर सकते।

डॉ0 अम्बेडकर ने फरवरी 1951 में हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया। इस बिल के द्वारा उन्होंने एक विवाह (Monogamy) को संवैधानिक रूप से अनिवार्य करने का प्रस्ताव रखा। इसके अलावा महिलाओं के लिए तलाक का अधिकार व सम्पत्ति में महिलाओं के अधिकार को सुनिश्चित किया, परन्तु इस बिल का व्यापक विरोध किया गया। अम्बेडकर ने अपना पक्ष रखते हुए कहा कि 'बृहस्पति स्मृति'में भी सम्पत्ति में महिलाओं के अधिकार को स्वीकृति दी गयी है। इसी प्रकार 'पराशर स्मृति'में विवाह विच्छेद को मान्यता दी गयी थी तो वर्तमान समय में महिलाओं को इन अधिकारों से क्यों वंचित रखा जा रहा है। डॉ0 अम्बेडकर ने भारत के संविधान की रचना करते समय लैंगिक असमानता और भेदभाव को दूर करने के उद्देश्य से कई प्रावधान रखें। उनमें से कुछ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं जो इस प्रकार है :

- कानून की निगाह में बराबरी और कानूनों की बराबर रक्षा। (अनुच्छेद–14)
- अन्य वस्तुओं के साथ–साथ लिंग के आधार पर भेदभाव, हीनता विशेषतयः सार्वजनिक स्थलों पर पहुँच की मुक्त उपलब्धता और राज्यों को महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान बनाने के अधिकार (अनुच्छेद–15)
- जनसेवायोजन (रोजगार) के अवसरों की समानता (अनुच्छेद–16)
- राज्य द्वारा स्त्री–पुरुषों के स्वास्थ्य एवं शक्ति को सुरक्षित रखने के लिए अपनी सार्वजनिक नीति का निर्धारण (अनुच्छेद–39 ई तथा एफ)
- कार्य की मानवीय दशाएँ तथा महिलाओं के लिए मातृत्व राहत (अनुच्छेद–42)
- राज्य द्वारा समान नागरिक संहिता बनाने के प्रयास (अनुच्छेद–44)

- महिलाओं के सम्मान के विपरीत प्रथाओं को त्यागना प्रत्येक नागरिक का मूलभूत कर्तव्य (अनुच्छेद–51 ए–ई)

अम्बेडकर ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार लाने के लिए जो प्रयत्न 'हिन्दू कोड बिल' के प्रस्तुतिकरण के रूप में किए उसके मूर्त परिणाम तब सामने आए जब 'विशेष विवाह अधिनियम 1954' तथा 'हिन्दू विवाह अधिनियम 1955' लागू किए गए।

विशेष विवाह अधिनियम 1954 जिसके अन्तर्गत किसी भी धर्म एवं जाति के लड़के तथा लड़कियों जिनकी आयु क्रमशः 21 वर्ष एवं 18 वर्ष की हो, को अपनी स्वेच्छा से विवाह करने की अनुमति प्रदान की गयी है।

अम्बेडकर ने नारी वर्ग की स्थिति के समुत्थान के लिए व्यवहारिक स्तर पर उनकी समस्या को समझने का प्रयास किया। आज कानून की दृष्टि से नारी को जो सुविधाएँ मिली हैं उनके पीछे डॉ0 अम्बेडकर का गहन चिन्तन और मनन सम्मिलित है। उनके प्रयत्नों के लम्बे संघर्षपूर्ण प्रयास इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि वे उपेक्षितों के मसीहा थे और नारी की गरिमा को पुनः स्थापित करना चाहते थे। उनका सपना था कि एक ऐसे समाज की स्थापना हो जिसमें प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग एवं समूह सम्मानित जीवन जी सकें, सभी समूह एक–दूसरे का सम्मान करें आदि। वे आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास भी चाहते थे। जो समस्यायें अम्बेडकर जी के काल में थींवह आज भी पूर्णतया सुलझ नहीं पायी हैं। आज भी 'संगठन, शिक्षा एवं संघर्ष' का नारा उतना ही प्रासंगिक है। आज आवश्यकता एक समर्पित नेतृत्व की है जो शोषित वर्ग की चेतना को और अधिक सशक्त बना सके और उन्हें उच्च स्तरीय जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित कर सके। वर्तमान समय में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के चलते भारतीय समाज अत्यधिक जटिल होता जा रहा है ऐसे में कमजोर वर्ग का सशक्त होना अनिवार्य है अन्यथा उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। इन गम्भीर परिस्थितियों में हमें भारत रत्न बाबा साहेब डॉ0 भीमराव राम जी अम्बेडकर जैसे दस भीमराव अम्बेडकर की आवश्यकता है जो भारत जैसे देश को सँवार सकें।

निष्कर्ष

बाबा साहेब अम्बेडकर महिलाओं की आजादी के पैरोकार थे। उन्होंने महिला सशक्तीकरण को नई राह दी। यूँ तो समय–समय पर अलग–अलग महापुरुषों ने महिलाओं के अधिकारों पर जोर दिया लेकिन भारत के मूल दस्तावेजों में इन अधिकारों को दर्ज कराने का काम बाबा साहेब ने किया, वह भी कड़े विरोध के बावजूद। महिला उत्थान सम्बन्धी प्रयासों पर विरोध उस समय की मानसिकता को दर्शाता है जिसने सदैव स्त्रियों को दोयम दर्जे का स्थान दिया है, जिनके लिए महिला उनकी सम्पत्ति से अधिक कुछ नहीं थीं। ''रात और दिन, कभी भी स्त्री को स्वतन्त्र नहीं होने देना चाहिए। उन्हें लैंगिक सम्बन्धों द्वारा अपने वश में रखना चाहिए, क्योंकि स्त्री स्वतन्त्र होने लायक नहीं है''। मनुस्मृति (अध्याय 2–3 तथा 9) में लिखी यह बात बताती है कि उस वक्त महिलाओं की क्या दशा रही होगी। हमारा समाज सदियों से मनुवादी संस्कृति से ग्रसित रहा है। आज भी पूरे देश में महिला सुरक्षा और 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे सशक्त सन्देशों को दूर–दूर तक पहुँचाने के प्रयास किए जा रहे हैं परन्तु सच्चाई यह है कि महिलाएँ आज भी संकट में हैं। दिल्ली का निर्भया काण्ड हो, यू0पी0 का उन्नाव, मिर्चपुर, हैदराबाद काण्ड या फिर कठुआ का दर्दनाक हादसा, ये सभी घटनाएँ बताती हैं कि महिला सुरक्षा के इतने संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद महिलाएँ सुरक्षित नहीं हैं। राष्ट्रीय क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो के नवीनतम आँकड़ों के अनुसार हर 15 मिनट में एक बलात्कार दर्ज होता है। ये सभी घटनाएँ इस लिए घट रही हैं क्योंकि ऐसे कृत्य को अंजाम देने वालों को

कोई ठोस सजा नहीं मिल पाती, ये अपराधी कानून को धूल झोंकने में सफल हो जाते हैं। आज महिलाओं को अधिकार दिलाने के लिए हमारे पास जो भी संवैधानिक सुरक्षा कवच, कानूनी प्रावधान और संस्थागत उपाय मौजूद हैं, इसका अधिकांश श्रेय बाबा साहेब अम्बेडकर को जाता है जिनके अथक प्रयासों से यह सम्भव हो पाया है। अम्बेडकर सम्भवतः पहले अध्येता रहे हैं जिन्होंने जातीय संरचना में महिलाओं की स्थिति को लैंगिक दृष्टि से समझने का प्रयास किया। उनके सम्पूर्ण विचार मंथन के दृष्टिकोण में सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा महिला सशक्तीकरण था फिर चाहे वह किसी जाति, धर्म,सम्प्रदाय की हो।

जब भारत आजाद हुआ तब हिन्दू समाज में पुरुष और महिलाओं को तलाक का अधिकार नहीं था। विवाह, सात जन्मों का बन्धन माना जाता था। पुरुषों को एक से ज्यादा शादी करने की आजादी थी लेकिन विधवाएँ दोबारा शादी नहीं कर सकती थीं। विधवाओं को सम्पत्ति से भी वंचित रखा गया था। ऐसे में हिन्दू कोड बिल के जरिए महिलाओं को उनके अधिकार देने की बात बाबा साहेब ने कही। इस बिल के जरिए महिलाओं की उन्नति के द्वार खुलेजिसमें तलाक लेने का अधिकार, तलाक मिलने पर गुजारा भत्ता, एक पत्नी के होते हुए दूसरी शादी न करने का प्रावधान, बच्चे गोद लेने का अधिकार, सम्पत्ति में हिस्से का अधिकार, लड़की को उत्तराधिकार का अधिकार तथा अन्तर जातीय विवाह का अधिकार आदि सम्मिलित हैं।

यह बिल ऐसी तमाम कुरीतियों को हिन्दू धर्म से दूर करने में सक्षम है जिन्हें परम्परा के नाम पर कुछ कट्टरपंथी जिन्दा रखना चाहते थे। हिन्दू कोड बिल भारत की सभी महिलाओं के लिए बेहद अमूल्य साबित हुआ। सामाजिक न्याय, सामाजिक पहचान, समान अवसर और संवैधानिक स्वतन्त्रता के रूप में नारी सशक्तीकरण के लिए बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर के योगदान को पीढ़ी–दर–पीढ़ी याद किया जायेगा।

सन्दर्भ

1. अम्बेडकर बी.आर. 1979, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन (राइज एण्ड फाल ऑफ हिन्दू वूमेन का हिन्दी अनुवाद) अनुवादक श्रीवर्द्धन, लखनऊ बहुजन कल्याण प्रकाशन।
2. http://www.satyahindi.com
3. http://hindi.feminisiminidia.com
4. रघुवंशी, राखी, सिंह रामगोपाल, 2005–06, 'भारत में महिला सशक्तीकरण की प्रकृति एवं स्वरूप; *सामाजिक विमर्श*, अम्बेडकर अध्ययन केन्द्र, अद्धवार्षिकी, वाराणसी
5. बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर, *सम्पूर्ण वाड़्मय,*खण्ड 7, 1956
6. पूर्ववत्
7. पूर्ववत्
8. चतुर्वेदी मल्लिका, 2004, उपनगरीय महिलाओं पर आधुनिकीकरण का प्रभाव, अमृत प्रकाशन, वाराणसी।
9. हसनैन नदीम, 2004, समकालीन भारतीय समाज एक समाज शास्त्रीय परिदृश्य, भारत बुक सेण्टर, लखनऊ,
10. पूर्ववत्
11. चतुर्वेदी प्रेरणा, 2018, सामाजिक समस्या एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, वेबसाइट : pravakta.com/social-equality-and-dr-bhimrao-ambedkar/

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

भारत में नक्सली आंदोलन के कारण एवं निदान : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ0 दिनेश सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग,
भूपेश गुप्त महाविद्यालय, भभुआ
कैमूर, बिहार

'नक्सलवाद' जो भारत की एक सामयिक ज्वलंत समस्या है, पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के एक छोटे से गांव नक्सलबाड़ी से 1967 में (जल, जंगल, जमीन) गरीबी, शोषण के विरूद्ध चला आंदोलन है जो आज पूरे भारत में अपना पैर पसार चुका है। यह समस्या आज कैंसर का रूप लेती नजर आ रही है। सरकार द्वारा इस रोग को खत्म करने के लिए जितना ही प्रयास किया जा रहा है यह उतना ही अधिक फैलता जा रहा है। सन् 1990 तक मात्र 16 जिलों तक सीमित नक्सलवाद आज देश के लगभग 240 जिलों में फैल चुका है।

वर्ष 1967 में नक्सलबाड़ी गांव में जल, जंगल और जमीन को लेकर एक ऐसे विवाद का जन्म हुआ तो भूस्वामियों और भूमिहीन किसानों के मध्य वर्ग संघर्ष को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप भू स्वामियों के विरूद्ध भूमिहीन किसान, श्रमिक व बेरोजगार युवकों ने अपना आंदोलन प्रारम्भ किया जिसका नेतृत्व सी0पी0एम0 सदस्य एवं जिला स्तरीय नेता चारू मजूमदार व कानू सान्याल ने किया। नक्सलबाड़ी क्षेत्र होने के कारण इस आंदोलन का नाम दिया गया– नक्सलवाद एवं इस क्रांति का नाम दिया गया– सर्वहारा की क्रांति। आज यह स्थानीय विवाद (ग्रामीण क्षेत्र) से उठकर देशव्यापी समस्या (ग्रामीण + शहरी) बन गया है।

नक्सलवादी आंदोलन का जन्म साम्यवादी आंदोलन की कोख से हुआ है। 1967 में जब पश्चिम बंगाल में **CPI (M)** के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी तभी अतिवादी विचारधारा वालों ने दार्जिलिंग जिले के तीन जगहों– नक्सलवाड़ी, खाबरी एवं फन्सी देवा में भूमिहीन कृषकों का संघर्ष/विद्रोह आयोजित किया। इन आदिवासियों ने धीरे–धीरे भारत के विभिन्न राज्यों में विद्रोही गुटों का निर्माण किया और नक्सलवादी कहलाये। 01 मई 1969 से देश में फैले इन गुटों ने गोपनीय रूप से कलकत्ता में तृतीय साम्यवादी दल का निर्माण कर इसे भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी–लेनिनवादी) **CPI (ML)** का नाम दिया एवं नेतृत्व का उत्तरदायित्व चारू मजूमदार व कानू सान्याल को दिया।

माओ की लाल पुस्तक हाथ में लेकर कानू सान्याल ने जनसभा में कहा कि भारत में कभी भी कोई क्रांतिकारी दल नहीं रहा है। साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और चाकर पूंजी के दलालों ने कम्युनिस्ट पार्टी को सही रास्ता अपनाने से रोका। जब चारू मजूमदार ने संशोधनवादी नेतृत्व का विरोध किया तो उन्हें मानसिक दृष्टि से बीमार कहा गया लेकिन मजूमदार के आह्वान ने सारे देश में हलचल मचा दी। सान्याल ने अपने इस भाषण में नक्सलवाड़ी को भारत का चिकांग पहाड़ बताया, जहां से माओ ने चीन की क्रांति का सही रास्ता दिखाया था। सान्याल ने स्पष्ट किया कि पश्चिम बंगाल, असम, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, केरल, तमिलनाडु के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी गोलबन्द हो चुके है। उन्होंने संशोधन वादियों के 'सड़े–गले' संसदीय रास्ते को ठुकराकर सशस्त्र संघर्ष के जरिए सत्ता पर एकाधिकार का क्रांतिकारी रास्ता सारे भारत में अपना लिया है।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने **CPI (ML)** की स्थापना का स्वागत किया और एक सप्ताह के अन्दर उसे मान्यता दे दी। पेकिंग रेडियो ने इस पार्टी की स्थापना के बारे में 'समन्वय समिति' के प्रस्ताव व सान्याल के भाषण का प्रसारण किया। नक्सलपंथियों के अंग्रेजी मुखपत्र लिबरेशन ने इस समर्थन हेतु आभार व्यक्त कर लिखा कि अब फिर महान चीन की कम्युनिस्ट पार्टी हमारी नवजात पार्टी को, मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओत्से तुंग पर आधारित सशस्त्र संघर्ष की पार्टी को स्पष्ट और प्रेरणादायक समर्थन हेतु आगे आयी है। नक्सलवादियों का एक प्रतिनिधिमंडल 1969 में चीन गया, जहां उसका भव्य स्वागत

हुआ। पेकिंग रिव्यू में प्रकाशित रिपोर्ट में भारतीय नक्सलवादियों ने माओ द्वारा दिखाये गये रास्ते पर चलकर नये भारत के निर्माण का आश्वासन दिया। उन्होंने कहा– ''हम करोड़ो उत्पीड़ित भारतीय किसानों को गोलबंद करेंगे, उन्हें संगठित करेंगे, हथियार से लैस होगर गांवों से शहरों को घेर लेंगे और अन्त में सम्पूर्ण देश की राजनीतिक सत्ता पर कब्ज कर लेंगे।''

छल, बल अथवा युद्ध चाहे जैसे भी हो सर्वहारा के लिए सत्ता–प्राप्ति ही माओवादी–नक्सलियों का उद्देश्य है। 1980 के दशक में जब माओवादियों का प्रचार–प्रसार बिहार एवं झारखण्ड में तीव्र गति से हो रहा था, तब इनका जोर लाल क्रांति एवं बौद्धिक प्रचार के साथ–साथ सर्वहारा के दिल में सम्मानपूर्ण जीवन की आशा जगाने पर था। इसके लिए उन्होंने बड़े भूस्वामियों के साथ खून ही होली खेली। इनका अगला कदम था– वन सम्पदा का विनाश, सुदूर क्षेत्रों में सड़क, बिजली आदि का विरोध तथा पुलिस एवं अन्य सरकारी अधिकारियों के अपहरण। तीसरे चरण में इन्होंने प्रशासनिक एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों को बम विस्फोटों से उड़ाना आरम्भ किया तथा निर्वाचन का बहिष्कार सफल नहीं होने पर अपने समर्थित उम्मीदरवारों की जीत सुनिश्चित करायी। वर्तमान में वे चौथे चरण में प्रवेश कर गये हैं जहां वे हिंसक गतिविधियों में लिप्त होकर देश, समाज एवं जनता के दुश्मन बनते जा रहे है। चीन, नेपाल एवं श्रीलंका के लिट्टे ग्रुप से भी इन्हें सहयोग एवं समर्थन मिल रहा है। आज की तारीख में नक्सली वास्तव में हमारे देश के आंतरिक सुरक्षा के लिए सबड़े बड़ी चुनौती बन चुके हैं।

कभी लाठी और कुल्हाड़ी से शुरू हुआ सफर (नक्सली आंदोलन) अब पैन ड्राइव और लैपटॉप तक पहुंच चुका है। रेड कारिडोर बनाने के रास्ते पर निकले नक्सली अब हाईटेक इलेक्ट्रॉनिक गुड्स का जमकर इस्तेमाल कर रहे है। घने जंगलों में और पहाड़ों पर भी उनके पास वे सारी सुविधाएं मौजूद है जो किसी बड़ी मल्टीनेशनल कंपनी के **CEO** को उपलब्ध है। लाल चिंगारी का नारा बुलन्द किए फिर रहे माओवादियों को चलाने और बढ़ाने के लिए हर उस हथकंडे को अपना रहे है जो सुरक्षा तंत्र से लोहा लेने में कारगर हो। पहले माना जाता था कि इनका प्रभाव गांव–गिरान के खेत–खलिहान तक ही है लेकिन इनका प्रभाव इतना बढ़ गया है कि इनके आह्वान पर रेल प्रशासन ट्रेनों का रूट बदलने लगता है या तो ट्रेन ही बंद कर देता है। देश के अन्य जिलों सहित बिहार के पटना, भोजपुर, जहानाबाद, गया, औरंगाबाद, रोहतास, कैमूर, पश्चिम चम्पारण, पूर्वी चम्पारण, वैशाली, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, शिवंहर, बेगूसराय, भागलपुर, बांका, मुंगेर, खगड़िया, जमुई, मधुबनी, सुपौल, अररिया, नालंदा और नवादा में इनकी गतिविधियां अलार्मिंग स्टेज में है। पूरे देश में नक्सलियों का प्रभाव 12 प्रदेशों के 220 जिलों में है। देश के भौगोलिक क्षेत्र के करीब 40 प्रतिशत हिस्से पर इनका कब्जा है। आई0बी0 की रिपोर्ट के अनुसार 20,000 सशस्त नक्सली सक्रिय है। करीब 50,000 इसके कैडर है जो पूरी तरह सक्रिय रहते हैं। नक्सली आंदोलन को जानकर मानते हैं कि पीपुल्सवाद ग्रुप और एम0सी0सी0 के विलय के बाद से उनकी ताकत बढ़ी है। इस विलय के बाद ही भाकपा माओवादी का गठन हुआ था। विलय के समय कहा गया था कि भाकपा माओवादी के पास लगभग एक हजार हथियार है लेकिन ऐसी बात नहीं है, हथियार इससे बहुत ज्यादा है। नक्सलियों की फौज जिसे पीपुल्स गुरिल्ला लिबरेशन आर्मी कहते हैं, में बहाली अभियान चलाया जाता है तथा प्रशिक्षण शिविर भी लगते है।। इस फौज को अत्याधुनिक हथियारों से लैस करने के लिए माओवादी हथियार और विस्फोटक खरीद रहे है। माना जा रहा है कि उल्फा जैसे संगठनों से इनका नजदीकी संबंध है। पुलिस भी मानने लगी है कि हाल के दिनों में इनकी ताकत बढ़ी है।

1967 में पश्चिम बंगाल के लगभग सत्तर गांवों के एक समूह नक्सलवादी से शुरू हुए नक्सली आंदोलन या विचारधारा को शुरूआती दौर में नजरअंदाज किया जाता रहा और राजनीतिक दल अपने–अपने नफा–नुकसान के हिसाब से इसकी आग में अपनी राजनीतिक रोटियां सेकते रहे। इस कारण अंदर ही अंदर नक्सलवाद की जड़ें पनपती रही। आज इससे सबसे ज्यादा प्रभावित राज्यों में पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा प्रमुख है।

इसमें कोई शक नहीं आतंकवाद में तब्दील हो चुका नक्सलवाद अब देश के लिए खतरा बनता जा

रहा है। प्रधानमंत्री से लेकर गृहमंत्री तक नक्सली हिंसा को लेकर चिंता जता चुके है। भारत के गृहसचिव जी0के0पिल्लई ने भी बयान देकर कहा है कि– 'माओवादियों का मकसद 2050 तक भारतीय लोकतंत्र को उखाड़ फेंकना है।' भारत में वामपंथी उग्रवाद की स्थिति विषम पर सेमिनार को संबोधित करते हुए गृहसचिव ने यह भी कहा कि– अगर मौजूदा समय में माओवादी चाहें तो भारतीय अर्थव्यवस्था के कई सेक्टरों को घुटने के बल बैठा सकते हैं, मगर वे फिलहाल ऐसा नहीं करना चाहते क्योंकि उन्हें पता है कि इससे शासन उन पर कड़ी कार्रवाई करेगा। इस बयान के ठीक अगले ही दिन माओवादी नेता कोटेश्वर राव उर्फ किशन जी का बयान आ गया कि हम 2050 से पहले ही भारत में तख्ता पलट कर रख देंगे।

CPI (माओवादी) के नक्सलियों की जनमुक्ति छापामार सेना (द पीपुल्स लिबरेशन गुरिल्ला आर्मी या पी0एल0जी0ए0) की 11वीं वर्षगांठ 5 दिसम्बर 2011 को सम्पन्न हुईं। इस दौरान ये विद्रोही विभिन्न स्थानों पर सरकारी दफ्तरों के भवनों, स्कूलों और रेलवे लाइनों को विस्फोट से उड़ाने के साथ हिसां की होड़ में जुटे रहे। **PLGA** की स्थापना **CPI M.L.**(पीपुल्सवार) जिसे **PWG** के नाम से भी जाना जाता है, द्वारा 2 दिसम्बर 2000 को दी गयी थी, तब इसका नाम **PGA** (पीपुल्स गोरिल्ला आर्मी) रखा गया था। यह स्थापना पीपुल्स वार की केन्द्रीय कमिटी के तीन सदस्यों एम0आर0रेड्डी, वाइ0एस0रेड्डी और एस0नरेश के करीम नगर जिले के जंगलों में मुठभेड़ में मारे जाने की पहली बरसी पर की गयी थी। पीपुल्स वार और माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर ऑफ इंडिया **(MCCI)** के 21 सितम्बर, 2004 को हुए विलय के बाद **PGA** का नाम बदलकर **PLGA** किया गया।

PLGA के गठन की घोषणा के वक्त नम्बाला केशव राव उर्फ बासव राजू, जिन्हें माओवादी लड़ाकों का वास्तविक प्रमुख माना जाता था, ने कहा था कि इस संगठन की स्थापना साम्राज्यवादी, सामंतवादी और नौकरशाह पूंजीवादी शासन के खात्मे के लिए तथा समाजवाद की राह के पहले कदम के रूप में एक नये लोकतांत्रिक शासन के गठन के लिए राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने को की गयी है। इसका ध्वज हथियारों के बल पर राज्य को उखाड़ फेंकने के प्रतीक के रूप में तैयार किया गया। ध्वज पर प्रतीक चिह्न के रूप में हथौरा और बंदूक का इस्तेमाल किया गया।

पी एल जी ए में तीन तरह की सेना है– प्राथमिक सेना (प्लाटून्स), द्वितीयक सेना (गुरिल्ला स्क्वाड) और आधारभूत सेना (पीपुल्स मिलिशिया)। पीपुल्स मिलिशिया में वे लोग होते हैं जो जीवन यापन के लिए अन्य काम करते हैं और वामुश्किल पखवाड़े में एक बार इसके सैन्य प्रशिक्षण में भाग लेते है। पीपुल्स मिलिशिया ही पी0जी0ए0 का आधार है। इसके अभाव में हथियार बंद संघर्ष को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता यदि आम लोगों की भागीदारी के साथ बड़े पैमाने पर पीपुल्स मिलिशिया का गठन न हो। 2004 के बाद प्रमुख नक्सली हमलों में पीपुल्स मिलिशिया ने बड़ी भूमिका निभायी है और इसमें सैकड़ों की संख्या में भाग लिया है। फिर चाहे वह 6 फरवरी 2004 को कोरापुट (उड़ीसा) में शास्त्रागार से 528 हथियारों की लूट हो, 11 नवम्बर 2005 को गिरिडीह (झारखण्ड) में होमगार्ड ट्रेनिंग सेंटर से 280 हथियारों की लूट, 13 नवम्बर 2005 के जहानाबाद (बिहार) में जेल पर हमला कर 900 केदियों की रिहाई हो, 15 फरवरी 2008 को नयागढ़ (उड़ीसा) में शास्त्रागार से 1100 हथियारों एवं करीब दो लाख कारतूस की लूट या फिर ऐसे अनेक बड़े हमले।

नक्सली वारदातों में हुई मौतों की तालिका

तिथि	वर्ष	स्थान	मारे गए जवान
29 जून	2008	बाली भेला (उड़ीसा)	38
16 जुलाई	2008	मलकानगिरि (उड़ीसा)	21

13 अप्रैल	2009	कोरा पुट (उड़ीसा)	10
22 मई	2009	गढ़चिरौली (महाराष्ट्र)	16
10 जून	2009	सरंदा जंगल (झारखण्ड)	9
13 जून	2009	बोकरो जनपद (झारखण्ड)	10
08 अक्टूबर	2009	गढ़चिरौली (महाराष्ट्र)	17
15 फरवरी	2010	पश्चिमी मिदनापुर (पं0 बंगाल)	24
04 अप्रैल	2010	कोरापुट (उड़ीसा)	11
06 अप्रैल	2010	दंतेवाड़ा (छत्तीसगढ़)	75
29 जून	2010	नारायनपुर जनपद (छत्तीसगढ़)	26

सामार–शोध दृष्टि **Vol 2 No. 8 Oct.-Dec. 2011** पेज 70

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के विभिन्न राज्यों में नक्सलवादी हिंसा पिछले चार दशकों से चली आ रही है किन्तु इन समस्याओं को जड़ से उखाड़ फेंकने का सार्थक प्रयास अभी तक नहीं किया गया जिससे आज यह चुनौती उत्पन्न हुई है। हम देख रहे हैं कि दक्षिण में तिरूपति से लेकर उत्तर में पशुपति तक एक लाल गलियारा तैयार हो गया है। वास्तव में नक्सली समस्या का जड़ प्रमुख रूप से समाज में व्याप्त वर्गभेद के साथ–साथ गरीबी एवं बेरोजगारी है। भारत में भूमि सुधार कार्यक्रमों पर ईमानदारी के साथ तेजी से अमल हो तथा सरकार द्वारा गरीबी एवं बेरोजगारी के लिए भी कार्यक्रम ईमानदारीपूर्वक लागू किये जाए तो इस समस्या पर काबू पाया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप केवल बिहार में सिर्फ 0.1 प्रतिशत भूस्वामियों के पास 19.76 लाख एकड़ जमीन है। जबकि 39.27 प्रतिशत मजदूर है जिनके पास कोई जमीन नहीं है। नक्सलवाद, मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष से प्रभावित है। इसके तहत शोषित, उपेक्षित, एवं दलित वर्ग अपनी संघर्ष समिति से पूंजीपतियों, जमींदारों, साहूकारों एवं शासकों को शिकार बनाते हैं और शासक वर्ग की राजसत्ता को लूटना अपना अधिकार मानते हैं। उनकी धारणा है कि अपने अधिकार प्राप्त करने में जो बाधा पहुंचाता है उसे समाप्त कर देना चाहिए तभी सर्वहारा शासनतंत्र की स्थापना हो सकेगी। हालांकि नक्सलवाद का वास्तविक उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करना है किन्तु अकारण हिंसा, अपराध एवं उग्रवाद अपनाने के कारण यह हमारे समाज के लिए बड़ी चुनौती एवं राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से एक सामयिक समस्या के रूप में उभरा है। नक्सलवाद को आतंकवाद का पर्याय कहना अनुचित है। वास्तविक रूप से नक्सलवाद एक विचारात्मक, राजनीतिक व आर्थिक संघर्ष है जो शासक वर्ग की सत्ता को उखाड़ा फेंकना चाहता है। ऐसे शासक वर्ग की राजसत्ता को जिसके मालिक देशी–विदेशी पूंजीपति, भू–स्वामी, ठेकेदार, दलाल, नौकरशाह है और जो बहुसंख्यक श्रमजीवी वर्ग पर शासन करते हैं।

नक्सल निदान के सूत्र

1. भूमि सुधार कार्यक्रम को ईमानदारी पूर्वक लागू करना एवं भारत में जारी गलत आर्थिक नीतियों में परिवर्तन करना।
2. दलित, आदिवासी और वंचित समूहों की आजीविका को सुरक्षित करना तथा शोषण से मुक्ति का भरोसा पैदा करना।
3. विकास–रोजगार के लिए कानून के साथ–साथ सच्ची गारंटी देना, बैंको से कर्ज प्राप्ति के सरलीकरण जैसे शैक्षणिक या आवासीय प्रमाण पत्र पर परफारमेंस आधारित किस्तों पर कर्ज की

प्राप्ति।

4. हिंसक नक्सलियों के लिए समर्पण सह पुनर्वास योजना लागू करना।
5. प्रचार–प्रसार रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्रों, होर्डिगस, बैनर एवं अन्य माध्यमों से नक्सलियों की करतूतों के जनता के समक्ष उजागर करते हुए प्रजातांत्रिक व्यवस्था की खासियतों के साथ जनता को जागरूक करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय राजनीति के पटल पर माओवादियों का उदय अकारण और अकस्मात हुई कोई घटना नहीं है। इसके पीछे ढेरों कारण माने जाते है। एक संगठन के रूप में उदय होने से पहले यह आंदोलन एक विचारधारा के रूप में सामने आया पर कालान्तर में इस विचारधारा में एक बुनियादी बदलाव यह आ गया कि वे माओ के उस प्रसिद्ध दो सूत्र पर काम करने लगे कि राजनैतिक सत्ता बंदूक की नली से निकलती है और राजनीति रक्तपात रहित युद्ध है और युद्ध रक्तपात युक्त राजनीति है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि नक्सलवाद की समस्या का हल उसके उत्पत्तियों के कारकों को समाप्त करके ही खोजा जा सकता है। शक्ति से इसे समाप्त करने पर नक्सलवाद को और ज्यादा विकृत हो जाने अथवा अल्पकालिक प्रभाव ही दिखायी पड़ने की ज्यादा संभावना है। इसके विपरीत यदि उनकी आवश्यकताओं को दृष्टिगत करते हुए संभावित विकल्पों की तलाश की जाय तो अपेक्षाकृत सुखद और दीर्घकालिक परिणाम प्राप्त होंगे।

संदर्भ सूची–

1. लाल बी0आर0, माओवाद से आधी–अधूरी लड़ाई, दैनिक जागरण, पटना, 30 जुलाई 2011, पृष्ठ 12
2. सिंह डॉ0 शक्ति, नक्सलवाद : समस्या एवं समाधान, परमिता (वाराणसी), जनवरी–मार्च 2011,पृष्ठ 78
3. सिंह, ब्रजेन्द्र, भारत में नक्सलवादी आंदोलन, शोध दृष्टि **Vol.2 No.8, 8 October-December, 2011,** पृष्ठ 68 (वाराणसी)
4. अग्रवाल, दिलीप कुमार, नक्सली समस्या पर एक विचार हिन्दुस्तान (पटना), 03 अगस्त, 2010
5. उपाध्याय अतुल, तकनीकी ताकत में पुलिस से बीस, हिन्दुस्तान, पटना, 22 दिसम्बर 2009, पृष्ठ 14
6. कमलेश, आखिर क्यों बढ़ रही है माओवादियों की ताकत, हिन्दुस्तान, पटना, 22 दिसम्बर, 2009, पृष्ठ 14
7. राय, डॉ0 शिव कुमार, नक्सलियों का महिमामंडन, दैनिक जागरण, पटना, 14 मार्च, 2010, पृष्ठ 12
8. रमन्ना, पी0बी0– नक्सल सेना बनाम सुरक्षा बल, प्रभात खबर गया, 17 दिसम्बर, 2011, पृष्ठ 8
9. प्रभात खबर, पटना, 17 दिसम्बर, 2010, पृष्ठ 10
10. सिंह, निर्णय नारायण नक्सलवाद और भारत की आंतरिक सुरक्षा समस्या, शोध पुंज दृष्टि, **Vol.1, No. 3, July-Dec, 2011,** पृष्ठ 132–133
11. रंजन सत्येन्द्र– माओवाद : मुद्दा विकास नहीं, न्याय, प्रभात खबर, पटना, 16 अक्टूबर, 2009
12. राय, गौरव कुमार– नक्सलवाद की समस्या तथा समाधान : एक मनोवैज्ञानिक समालोचना, परमिता (वाराणसी), अक्टूबर–दिसम्बर, 2009, पृष्ठ 34

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में दलितों का योगदान

डॉ0 चित्रलेखा कुमारी
ग्राम–अमेठ पोस्ट–भिटी
जिला–कैमूर, बिहार

1857 की क्रान्ति जिसे हम भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम या सिपाही विद्रोह कहते हैं, भारत की एक युगान्तरकारी घटना है जिसने अंग्रेजों को भारत में अपनी नीति बदलने के लिए बाध्य कर दी। यह क्रान्ति भले ही उद्देश्य प्राप्त करने में असफल रही लेकिन क्रान्तिकारियों को भी देशहित में प्राण गँवाने की सीख दे गयी।

1857 की क्रान्ति का स्वरूप, नामकरण, नायक, भाग लेने वाले क्रान्तिकारियों की भूमिका एवं योगदान आज भी विवादस्पद है। जहाँ एक ओर पारंपरिक इतिहास लेखन में इतिहासकारों ने मंगल पाण्डेय को इस क्रान्ति का प्रथम स्वाधीनता सेनानी बतलाये हैं तो दूसरी तरफ दलित इतिहासकार प्रथम स्वाधीनता सेनानी मातादीन भंगी को बतलाये हैं।

दतिल इतिहासकारों के मतानुसार इतिहास लेखन में भी दलितों के प्रति 'दलन' हुआ है। दलितों को इतिहास में उचित स्थान नहीं दिया गया है।

ज्योतिबा राव फुले और भीमराव अम्बेडकर के अंग्रेज समर्थक दलित आख्यान से अलग उत्तर प्रदेश और बिहार में बिल्कुल नया आख्यान विकसित हो रहा है। यहाँ के प्रमुख राजनीतिक दल बहुजन समाज पार्टी के समर्थन से बन रहे इस इतिहास की साफ मान्यता है कि दलितों ने 1857 में न सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी, बल्कि पहले स्वाधीनता सेनानी मंगल पाण्डेय नहीं, दलित मातादीन थे।

दलित इतिहासकारों का मत है कि गदर के इतिहास में मंगल पाण्डेय नाम के सवर्ण सैनिक का बढ़–चढ़ कर जिक्र आता है, लेकिन उन्हीं के साथ तैनात मेहतर जाति के सैनिक मातादीन का जिक्र नही के बराबर है जबकि मंगल पाण्डेय को प्रेरित करने में उस सैनिक की बड़ी भूमिका थी। मातादीन को मंगल पाण्डेय को प्रेरित करने में उस सैनिक की बड़ी भूमिका थी। मातादीन को मंगल पाण्डेय ने लोटा छुने से मना किया जो उन्होंने ताना मारते हुए कहा कि गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतुसों को जब दातों से काटते हो तब तुम्हारी जाति अपवित्र नहीं होती। मातादीन का जिक्र उन सैनिकों की सूची में किया गया है जिन्हें गदर के बाद गिरफ्तार कर लिया गया था। हकीकत यह है कि मातादीन पर अभियोग लगा था और उनका भी कोर्ट मार्शल किया गया था। शहीद वे भी थे, पर उनका जिक्र पाद टिप्पणी के रूप में किया जाता है। वे भी पाण्डेय की तरह अंग्रेजी सेना के कर्मचारी थे इसलिए गदर में उनकी भागीदारी एक तरफ ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ अहसमति दर्शाती है तो दूसरी तरफ अंग्रेजों के प्रति उनका विरोध।

1857 की क्रान्ति में शहीद हुवे दलितों का स्थल यू0पी0 एवं बिहार के गाँवों में छोटे मदिर और 'थान' के रूप में पूजा स्थल बन गया जहाँ लोग कालांतर में पवित्र स्थल मानकर पूजा एवं मनौती मानने लगे। बाद में भक्तों की इच्छाओं को पूरा करने वाले देवता का दर्जा मिल गया। इस तरह के स्थल आजमगढ़, साहबपुर, आरा और 1857 के केन्द्र रहे उत्तर भारत के अन्य इलाकों में पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ मझौवा गाँव में शहीद बाबा हैं। यहाँ गाँव के लोग नियमित पूजा करते हैं, जल चढ़ाते हैं, ठेकुए की मिठाई का भोग लगाते हैं, नव विवाहिताएँ शहीद बाबा के

स्थन पर पूजा करने जाती हैं। वास्तवकिता यह है कि 1857 की क्रान्ति में इस गाँव के चर्मकार जाति के चार लोग शहीद हुये थे।

ऐसे ही इलाहाबाद के साहबपुर गाँव के सिवान में एक ऊँचा थान है। इसे माना जाता है कि 1857 के शहीद संग्राम सिंह का माथा है जिसे अंग्रेजों ने काट दिया था। कालांतर में यहाँ भी पूजा–पाठ के साथ–साथ बलि भी दी जाने लगी। ठीक इसी प्रकार बिहार के आरा जिले के शाहपुर गाँव में रंजीत बाबा को भी कुछ समुदाय के लोग देवता की तरह मानते हैं। बताया जाता है कि रंजीत बाबा 1857 की क्रान्ति में शहीद हुए थे।

1857 की क्रान्ति में दलित महिलाओं ने भी बढ़चढ़ कर हिस्सा ली। दलित पुरुषों के मुकाबले दलित महिलाओं की संख्या सशस्त्र क्रान्ति में ज्यादा हैं। 1857 के पारंपरिक इतिहास लेखन से अलग दलित इतिहास लेखन का अपना आख्यान चल रहा है। जिसमें दलित महिलाओं के महत्व को रेखांकित किया जा रहा है। दलित वीरांगनाओं के मिथक की फिर से खोज की जा रही है ताकि उन्हें अस्मिता निर्माण का सशक्त प्रतीक बनाया जाय और दलितों के सामाजिक, राजनीतिक महत्व को फिर से परिभाषित किया जाय।

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 की क्रान्ति की प्रमुख विशेषता यह भी थी कि इसमें महिलाओं ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। महिलाओं ने न केवल आजादी के दिवानों के सहायक की भूमिका अदा की बल्कि युद्ध में स्वयं अंग्रेजो का सामना किया। कोरी जाति की झलकारी बाई, पासी जाति की उदा देवी, लोधी जाति की अवंती बाई, मेहतर जाति की महावीरी देवी गुर्जर जाति की आशा देवी सहित कई महिलाएँ लड़ाई में शामिल थी और वे सभी दलित जातियाँ के लिए वीरता की प्रतीक बन गई हैं।

1857 की दलित वीरांगनाओं में झलकारी बाई का स्थान है। उनके पति पूरन कोरी राजा गंगाधर राव के सिपाही थे। वे मूलतः झांसी की रहने वाली थी। ये कोरी जाति की थी। झलकारी बाई एक आदर्श महिला थी। ये बचपन से ही बहादुर थी। पति से धनुष विद्या भी सीखी थी। इसके अलावा कुश्ती, घुड़सवारी और निशानेबाजी, में भी निपुण थीं। बताया जाता है कि इनका चेहरा लक्ष्मीबाई से मिलता–जुलता था। धीरे–धीरे लक्ष्मीबाई की सखी बन गई। इन्हें महिला शाखा यानी दुर्गादल के नेतृत्व का जिम्मा सौंपा गया। अंग्रेजों ने जब झाँसी का किला घेरा तो झलकारी बाई बहादुरी से लड़ी। उन्होंने रानी लक्ष्मीबाई को महल से भाग निकलने को कहा तथा उनका वेश धरकर खुद लड़ाई लड़ी। इनके पति लड़ाई में मारे गये तो ये घायल सिंहनी हो गई और बहुत से अंग्रेजो को मारी और काफी समय तक छकाया। बाद में अंग्रेजों को पता चला कि वे रानी लक्ष्मीबाई नहीं, बल्कि झलकारी बाई है। एक मत के अनुसार गोली लगी और शहीद हो गई तो दूसरे मतानुसार वे मुक्त कर दी गई और 1890 तक जीवित रहीं।

इसी कड़ी में वीर पासी योद्धा ऊदा देवी ने लखनऊ के सिकन्दराबाग में एक अज्ञात वीरांगना के रूप में अपनी गौरव गाथा भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अंकत करा दी। इनका जन्म लखनऊ के उजरियाँव में हुआ था। इनका नाम जगरानी भी था और वे पासी जाति के मक्का से ब्याही गयी थी। उदा देवी बेगम हजरत महल की सहयोगी बनी और उन्होंने अपने नेतृत्व में एक महिला सेना बनाई। इनके पति चिनहट की लड़ाई में शहीद हो गए। 16 नवम्बर 1857 को सिकन्दर बाग के युद्ध में वे न केवल वीरता के साथ लड़ी बल्कि उन्होंने मृत्यु को अपने गले लगाया और 32 या 35 ब्रिटिश सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। उदा देवी की वीरता का साक्षात गवाह यूरोपियन सिपाही साजेन्ट फोर्वेस मिचैल था।

डब्ल्यू गार्डन अलेक्जेंडर ने सिकन्दराबाग के किले पर हमले का वर्णन इस प्रकार किया है उस लड़ाई में जो लोग मारे गए उनमें कुछ ऐसी महिलाएँ थी जिनका रूप रंग अमेजन के आदिवासियों से मिलता है। इन महिलाओं में चर्बी लगे कारतुसों को दाँत से काटने में कोई धार्मिक पूर्वाग्रह नहीं था। चाहे वह सुअर की चर्बी लगी हो या किसी और जानवर का। वे लोग जंगली बिल्लियों की तरह बहादुरी से लड़ी। वे जब तक मारी नहीं गई तब तक यह पता कर पाना भी मुश्किल था कि वे औरत हैं या मर्द।

8 मई, 1857 को दलित वीरांगना आशा देवी युवतियाँ का नेतृत्व करते हुए अंग्रेजो की सेना से संघर्ष करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गई। इनके साथ लड़ाई में साथ देने वाली दलित महिलाओं में शोभादेवी, रनवीरी बाल्मीकि, भगवती देवी रहीमी गुर्जरी, बाल्मीकि महावीरी देवी, भगवानी देवी, हबीबा गुर्जरी देवी, इन्द्रकौर, सहेजा बाल्मीकि, नामकौर, राजकौर एवं कुशल देवी प्रमुख थी।

1857 के गदर में रामगढ़ की रानी अवंती बाई जो मध्य प्रदेश के मांडला जिले के लोधी जाति की थी, अंग्रेजो ने उन पर काफी अत्याचार किये तो उन्होंने उसका प्रतिकार कर संघर्ष का ऐलान कर दिया। लड़ाई के मैदान में जब अंग्रेजों से चारों तरफ घीर गई तो उन्होंने अपने को समर्पण करने से मार लेना अच्छा समझा। स्वयं को मार कर लड़ाई के मैदान में शहीद हो कर भारतीय वीरांगना की श्रेणी में आ गई।

ऐसी ही एक वीरांगना महावीरी देवी हुई जो जाति से मेहतर थी। वह मुंडभर जिले के मुजफ्फर नगर की रहने वाली थी। अनपढ़ होते हुए भी बुद्धिमान थी। अंग्रेजों के जुल्म–अत्याचार के खिलाफ लड़ाई के मैदान में उतर गई। गदर में 22 महिलाओं के साथ अंग्रेजों पर हमला किया। लड़ाई के मैदान में सभी वीरगति को प्राप्त कर शहीद बन गई।

इन दलित वीरांगनाओं की वीरता का वर्णन कविताओं और गीतों में भी बहुत अच्छा ढंग से हुआ है। झलकारी बाई पर लिखा गया एक खण्ड काव्य है जो जनमानस में काफी प्रचलित है। इस खण्ड काव्य में एकदम वही तर्ज और कथ्य अपनाया गया है, जो सुभद्रा कुमारी चौहान ने झाँसी की रानी कविता में अपनाया था। इन गीतों एवं कविताओं को दलितों की रैलियाँ एवं मेलों में गाया जाता है। इतना ही नहीं इन दलित महिलाओं की वीरता का वर्णन गदर में फँस गए मराठी पुरोहित विष्णुराव गोड़से ने अपने ''माझा प्रवास'' और उदा देवी का वर्णन प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृत लाल नागर ने 'गदर के फूल' में बड़ा ही रोचक ढंग से किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दलितों ने गदर के अपने नायकों को देवता का स्थान दे दिया है लेकिन दूसरी तरफ अकादमिक इतिहास 1857 में दलितों की भूमिका को नहीं मानता। तर्क के रूप में पारंपरिक इतिहासकार कहते हैं कि दलितों के नेता ज्योतिबा फुले ने उन महान सैनिकों का अभिनंदन किया था जिन्होंने अंग्रेजो की मदद की थी। दलित परम्परा ने ज्योतिबा फुले के बाद अंग्रेजों का भारत में रहने के लिए पक्ष में बातें किये थे। भारतीय सवर्णों एवं अंग्रेजो में से दलितों को चुनने के लिए यदि कहा जाता तो निश्चित रूप से दलित परम्परा के लोग अंग्रेजों को चुनते। ऐसी विचारधारा अकादमिक इतिहास कारों की है।

जबकि दलितों के पक्षधर इतिहासकार कहते हैं कि 1857 का विद्रोह हुआ तो शासक सिर्फ अपनी रियासत बचाने के लिए लड़ रहे थे। उनके लिए यह स्वाधीनता संग्राम नहीं था, लेकिन दलितों की हिस्सेदारी से इस लड़ाई का रूप स्वतंत्रता संग्राम का बना।

1857 की क्रान्ति में दलितों के योगदान विषय पर कई पुस्तकें उपलब्ध है जिनमें डी0सी0 डींकर द्वारा लिखित स्वतंत्रता संग्राम में अछुतों का योगदान, मदान द्वारा 1987 में लिखित झुठी

आजादी, पासी समाज का स्वतंत्रता में योगदान (1998), अल्हा उदल और बुन्देलखण्ड (कौशलेन्द्र प्रताप यादव), दलित दस्तावेज, विद्रोह (1989) इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। गदर में दलितों का दरअसल में भावनात्मक लगाव रहा है। उनका मानना है कि इस संग्राम की शुरूआत उन्होंने ही की थी। अपना पक्ष रखते हुए कहते हैं कि झाँसी की अंग्रेजी सेना में बगावत करने वाले ज्यादातर दलित सैनिक थे और उसके बाद ही विद्रोह तेज हो गया। दलित सत्ता के लिए नहीं बल्कि अपनी मातृभूमि के लिए लड़ रहे थे। इसलिए आजादी की लड़ाई उनके लिए थी। इसका नेतृत्व करने वालों में भाऊ बक्शी, पूरन कोली, झलकारी बाई जैसे वीर और वीरांगना थे। उनका मानना है कि जिस गदर की शुरूआत का श्रेय अभिजात वर्ग के लोग मंगल पाण्डेय को देते हैं उसका श्रेय तो मेहतर जाति के मातादीन को दिया जाना चाहिए। क्योंकि मातादीन विद्रोह के प्रेरणास्त्रोत हैं जिन्होंने लोटा छूने के मुद्दे पर मंगल पाण्डेय को धिक्कारा तथा गोली में चर्बी–कारतुस वाली बात बताकर भारतीय सैनिकों की आँखे खोल दी और कैंट में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की चिंगारी भड़काई।

मातादीन के समर्थन में एस0आर0 सजीवन नाथ ने अपनी पुस्तक 1857 की क्रान्ति का जनक – नागवंशी भंगी मातादीन हेला में विस्तृत वर्णन किया है। इस पुस्तक में मातादीन को 1857 की क्रान्ति का जनक कहा गया है। उनके नाम पर गीत एवं कविता लिखे गये हैं जो राजनीतिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में गाया जाता है। कयी दलित पत्र पत्रिकाओं ने मातादीन के सम्मान में विशेषांक प्रकाशित किये हैं। जिनमें दलित केसरी, ''अनार्य भारत'' 'हिमायती' (1996) महत्वपूर्ण हैं। 1857 की क्रान्ति पर दलितों का अपना आख्यान है और उसके नायक कुँवर सिंह, तात्या टोपे और नाना साहेब नहीं, बल्कि जाटव जाति के चेतराम, मेहतर जाति के बल्लू, चमार जाति के बांके और पासी जाति के बिरसा जैसे वीर हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 1857 की क्रान्ति में दलितों ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया जिसमें राजाओं ने अपनी विरासत को बचाने के लिए भाग लिया तो दलितों ने अपने राजाओं के साथ–साथ मातृभूमि की रक्षा के लिए शहीद हो गये। दलित पुरुषों से बढ़कर दलित महिलाओं ने इस गदर में भाग लेकर भारतीय वीरांगना के रूप में अपनी पहचान बनाने में कायम हो गई। 1857 की क्रान्ति में दलितों का योगदान सराहनीय है एवं बेमिसाल है जिसे भुलाया नहीं जा सकता है। इनके योगदान को पूर्वाग्रह से हटकर इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखने की जरूरत है ताकि ऐसे शहीदों का देश में उचित सम्मान मिल सके।

सन्दर्भ सूची

1. 1857 दलितों का योगदान, हिन्दुस्तान, पटना 09 जनवरी, 2007
2. बद्री नारायण, मातादीन थे पहले स्वतंत्रता सेनानी, हिन्दुस्तान पटना, 09 जनवरी, 2009
3. चारू गुप्ता, मर्दों से आगे थीं मर्दानी महिलाएँ, हिन्दुस्तान पटना, 09 जनवरी, 2007
4. वीरांगना उदा देवी, पासी साम्राज्य, आर0 के0 चौधरी, पूर्व मंत्री, यू0पी0
5. विभूति नारायण राय, दलितों को सवर्णों की पांत में बैठाने की कोशिश, हिन्दुस्तान पटना, 09 जनवरी, 2007
6. वीरांगना उदा देवी, पासी शहीद दिवस स्मारिका, 1996
7. कौशलेन्द्र प्रताप यादव, अल्हा–उदल और बुन्देलखण्ड, अम्बेडकर टुडे, फरवरी 2010 सम्पादक : डॉ0 राजीव रत्न

नवयुग के प्रवर्तक कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद : एक अध्ययन

डॉ0 संजय कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग
भूपेश गुप्त महाविद्यालय, भभुआ
जिला–कैमूर, बिहार

किसी भी भाषा के उन्नयन में उस भाषा के लेखकों का हाथ होता है। हिन्दी भाषा के विकास में तुलसीदास जैसे मुगलकालीन लेखकों से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द, जयशंकर प्रसाद जैसे स्वनाम धन्य लेखकों का योगदान है। हिन्दी को लोकप्रिय कथा साहित्य से समृद्ध करने वाले गिने चुने लेखकों में मुंशी प्रेमचन्द का नाम लिया जाता है। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में भारतीय समाज को एक सोच दी। उसे अंधविश्वासी और रूढ़िवादी परम्पराओं से लडने के लिए न केवल प्रेरित किया, अपितु उसे एक दिशा भी दी। अपने उपन्यासों द्वारा उन्होंने समाज को जासूसी, तिलिस्मी और एय्यारी वाले कथा साहित्य से निकाल कर वास्तविक धरातल पर ला खड़ा किया। यह प्रेमचंद ही थे जिन्होंने पाठक के अंदर यह एहसास भर दिया कि जिस रूढ़ियों के अंधेरे में तुम लैम्पपोस्ट बनकर खड़े हो उसका उजाला बंद गलियों में दस्तक दे सकता है और यह सब उन्होंने यों कर दिखाया कि पढ़ने वाले को इसका आभास ही नहीं हुआ कि उसके अंदर कि दुनिया में रौशनी का एक सैलाब उड़ेला जा रहा है। यह मामूली बात नहीं थी। इसके लिए बड़े बड़े सधे हुए हाथों की जरूरत है। अपने उपन्यास में जासूसी कहानियों की भांति रोचकता बनाये रखते हुए आसपास की जिंदगी को उजागर करके रख देने का हुनर प्रेमचंद के ही पास था। अति सरल एवं मर्मस्पर्शी भाषा का प्रयोग करते हुए यह काम प्रेमचंद ने इतनी खूबसूरती से किया कि हमारी सामाजिक चेतना के वे प्रतीक बन गये। प्रेमचंद का अर्थ समाज सुधारक हो गया।

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को बनारस (काशी) के निकट लमही नामक ग्राम में हुआ था। इनके बचपन का नाम धनपत राय था। पिताश्री अजायब राय तथा माता आनंदी देवी थी। पिताजी सरकारी डाकखाने में क्लर्क थे। इनकी आयु जब सात वर्ष की थी तब इनकी माता का देहान्त हो गया। 15 वर्ष की आयु तक इनके पिताजी भी स्वर्गवासी हो गये।

प्रेमचंद ने 5 वर्ष की अवस्था में अपने गांव के प्राइमरी स्कूल में पढ़ना आरंभ किया और अनेक कठिनाईयों को पार करते हुए मैट्रिक की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसी बीच पिताजी का स्वर्गवास हो गया तथा इन्हें अपनी पढ़ाई आदि का खर्च चलाने के लिए 5 रूपये प्रतिमाह की ट्यूशन करनी पड़ी थी। नौकरी करते हुए इन्होंने बी0ए0 की परीक्षा पास की। 15 वर्ष की अवस्था में प्रेमचवंद का विवाह हुआ। पत्नी एक प्रकार से कर्कशा थी। उसको त्यागकर प्रेमचंद ने दूसरा विवाह बाल विधवा शिवरानी के साथ किया। शिवरानी प्रेमचंद के लिए अद्भुत जीवन संगिनी सिद्ध हुई। प्रेमचंद जी पहले एक वकील के यहां पांच रूपये माहवार पर ट्यूशन करते थे। बाद में सरकारी अध्यापक हुए। वहां से डिप्टी इंस्पेक्टर के पद पर पहुंच गये। सन् 1920 में गांधी जी के प्रभाव के कारण अपनी बीस वर्ष पुरानी नौकरी छोड़ दी और असहयोग आंदोलन में कूद पड़े और जेल गये। उसके बाद सम्पादन के क्षेत्र में प्रवेश किये तथा 'माधुरी', 'हंस', 'जागरण' और 'मर्यादा' जैसी उच्च कोटि की पत्रिकाओं का संपादन किया, प्रेमचंद कुछ समय के लिए बंबई के फिल्म क्षेत्र में भी गये। 8 अक्टूबर 1936 को इन्होंने अपना पार्थिव शरीर छोड़ दिया।

प्रेमचंद का प्रारम्भिक जीवन बड़े ही कठिनाईयों में व्यतीत हुआ। बचपन में ही मां का निधन

फिर विमाता द्वारा प्रताड़ित किया जाना, किशोरावस्था में पिता की मृत्यु आदि घटनाओं ने प्रेमचंद को गरीबी को काफी निकट से देखने का अवसर दिया। आर्थिक तंगी ने उन्हें साहूकारों की निकटता दी तो माता पिता की मृत्यु ने सामाजिक निकटता दी। इन सबका प्रभाव प्रेमचंद के साहित्य पर पड़ा। निर्भीकता, मुखरता, विद्रोह का जो पुट उनके साहित्य में मिलता है, वह उनके व्यक्तित्व में समाया था। स्वयं गरीबी में जीने के कारण उनके कथा साहित्य में गरीबी का यथार्थ चित्रण मिलता है। विधवा विवाह, बेमेल विवाह, गरीबों का शोषण, साहूकारी प्रथा, अंधविश्वासी तथा गांवों में प्रचलित छिटपुट रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति उनका विद्रोह उनके कथा साहित्य में पूरी तरह उजागर होता है।

प्रेमचंद ने सन् 1901 से कथा साहित्य का लेखन शुरू किया। प्रारंभ में उन्होंने उर्दू में ही लिखा परंतु बाद में हिन्दी में भी लिखने लगे। उर्दू में उन्होंने धनपत राय एवं नवाब राय नाम से लिखा। हिन्दी में उनका लेखन प्रेमचंद नाम से ही है। कुछ कहानियां धनपन राय एवं नवाब राय नाम से भी लिखी गयी हैं। प्रेमचंद की प्रथम उर्दू कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' सन् 1901 में प्रकाशित हुई थी। सन् 1902 में उनका प्रथम उपन्यास 'वरदान' प्रकाशित हुआ था। उनके कुछ प्रमुख उपन्यास सेवा सदन, निर्मला, कर्म भूमि, कायाकल्प, प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रय, गोदान है। मृत्यु के समय वे मंगलसूत्र नामक उपन्यास लिख रहे थे जो अधूरा ही रह गया। कफन, मानसरोवर, प्रेम पचीसी, प्रेम सरोवर, प्रेम प्रतिभा, सप्त सरोज, नव–निधि, उनके प्रमुख कहानी संग्रह है। यद्यपि प्रेमचंद कथा साहित्य हेतु विख्यात है। तथापि उन्होंने गद्य की विभिन्न विधाओं का स्पर्श किया है। कुछ विचार, कलम, तलवार, और न्याय जैसे निबन्धों के साथ–साथ उन्होंने संग्राम, कर्बला, रूठी रानी, तथा प्रेम के वेदी जैसे नाटक भी लिखे हैं। उन दिनों यद्यपि बाल साहित्य को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था फिर भी प्रेमचंद ने टालस्टाय की कहानियां, कुत्ते की कहानी, मनमोहक तथा जंगल की कहानियां बच्चों के लिये भी लिखा। इसके अतिरिक्त सृष्टि का आरंभ फिसाने आजाद, चांदी की डिबिया, हड़ताल तथा न्याय उनकी अनुवादित कृतियां है।

प्रेमचंद वास्तव में प्रगतिवादक लेखक थे। उनके सम्पूर्ण साहित्य में समाजवादी विचारों की झलक मिलती है। वे सौंदर्यवादी न होकर यथार्थवादी थे। साहित्यकार की संकुचित सौंदर्य दृष्टि की आलोचना करते हुए वह कहा करते थे, ''आज का साहित्यकार रूपवती स्त्री के गुलाबी गालों के सौंदर्य का वर्णन करना चाहता है किंतु उस श्रमिक स्त्री की ओर निगाह उठाकर भी नहीं देखता जो अपने दूध मुंहे बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाकर खेत में काम करते हुए चोटी का पसीना एड़ी तक बहा रही है। अब तक उनकी दृष्टि अमीरों और राजाओं के गगनचुंबी अट्टालिकाओं तक ही अवरूद्ध रही है। गरीबों के झोपड़े उनके ध्यान के अधिकारी ही नहीं थे।'' प्रेमचंद ने बहुत जोर देकर कहा कि अब हमें सौंदर्य की कसौटी को बदलना होगा। हमारी दृष्टि में सच्चा साहित्यकार वही होगा जो जीवन संग्राम में सौंदर्य के चरमोत्कर्ष को देखे। उन्होंने सौंदर्य के संबंध में जिस दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया उसका सम्पूर्ण प्रगतिशील साहित्य पर प्रभाव पड़ा है।

प्रेमचंद की मान्यता थी कि मानव की दुर्बलताओं का साहित्य में निरूपण तो होना ही चाहिए किन्तु लेखक का आग्रह मनुष्य की सद्प्रवृत्तियों के उद्घाटन पर होना चाहिए न कि उसकी कुप्रवृत्तियों के विस्तृत चित्रण पर। प्रेमचंद के साहित्य में समाज की प्रचलित नैतिक मर्यादाओं के प्रति स्वीकृति का भाव व्यक्त किया गया है न कि विरोध का। किन्तु बाद के उपन्यासों में उनका विरोध का स्वर मुखरित हुआ। प्रेमचंद स्वयं मार्क्सवाद से बहुत प्रभावित थे। इसी प्रभाव से वशीभूत होकर उन्होंने समाज के उस वर्ग का चित्रण किया है जो सदा से अपेक्षित रहा है किन्तु वे अपनी

कृतियों में मार्क्सवाद के प्रवक्ता नहीं दिखाई देते। इसी कारण कई स्वनाम धन्य समालोचकों ने प्रेमचंद को द्वितीय श्रेणी का साहित्यकार घोषित किया है। हमारे विचार से प्रेमचंद मानवतावादी लेखक थे। वह किसी वाद विशेष या विचार विशेष के प्रति प्रतिबद्ध नहीं थे।

प्रेमचंद ने अपने साहित्य द्वारा तत्कालीन समाज को झकझोर कर रख दिया था। स्वतंत्रता संग्राम में उनकी पूरी दिलचस्पी थी और वे गांधी जी के विचारों से प्रेरित थे। सेवा सदन और गोदान को छोड़कर उनके सभी उपन्यासों में गांधी युग का समग्र चित्रण है। बंग भंग आंदोलन, जलियावाला बाग हत्याकांड प्रेमचंद के काल की ही घटना है। इसका उनके ऊपर गहरा प्रभाव था। आजादी के लड़ाई के प्रति उनके रूझान को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने उनकी कई कहानियों को जब्त कर लिया। किन्तु प्रेमचंद के विचारों में कोई परिवर्तन न हुआ उल्टे उन्होंने शिक्षा विभाग की डिप्टी इंस्पेक्टरी से इस्तीफा देकर स्वतंत्र लेखन करने लगे। प्रेमचंद के उपन्यासों में परतंत्र भारत का स्वर सुनाई देता है। अंग्रेजों के प्रति द्रोह की भावना से ओतप्रोत समाज का चित्रण उनकी कहानियों में प्राप्त होता है। इन्होंने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से मानवीय करूणा, मानवीय गरिमा, मानवीय स्वतंत्रता की आकांक्षा मान्यताओं एवं दृष्टिकोण की नई व्याख्या प्रस्तुत की है। मोटे तौर पर प्रेमचंद द्वारा उनके कथा साहित्य में तीन प्रकार के समाज का चित्रण मिलता है, प्रथम मेहनतकश किसानों का समाज, द्वितीय किसानों की दुर्बलताओं का लाभ उठाकर सम्पन्न हुए साहूकारों का समाज, तृतीय धीसू या माधव जैसे पात्रों के माध्यम से व्यक्त अछूतों का समाज। प्रेमचंद का किसान श्रम तो करता है किन्तु उसका प्रतिफल क्रूर सामंती दमन के कारण नहीं प्राप्त कर पाता। इसी तरह अछूत वर्ग है जो गालियां और मार खाता है। फिर भी अपने में ही संतुष्ट और प्रसन्न रहता है।

प्रेमचंद ने जिस भारत का अपनी रचनाओं में चित्रण किया है, वह कमोबेश अब भी वही है। कफन, पूस की रात कहानियों में गरीबी ने पिसते जिन लाखों गरीबों का सशक्त चित्रण किया गया है, वे अभी भी बिल्कुल वैसे ही है। गांव में जमींदार, साहूकर, पटवारी तथा गांव की दुर्व्यवस्था के जिम्मेदार दूसरे छोटे अफसरों द्वारा क्रूर शोषण वाली व्यवस्था अभी भी मूलतः वही है। एक जवान लड़की का बूढ़े आदमी से ब्याह हो जाना 'निर्मला' की कहानी है। अभी भी इस देश में कई युवा औरतों की व्यथा गाथा है। लाखों, करोड़ों नहीं तो हजारों युवा लड़कियां सामाजिक पिछड़ेपन और ऊँच–नीच के अन्याय के कारण 'सेवासदन' उपन्यास की सुमन की तरह बेश्यालयों तक पहुंच जाती है, कारखाना लगाने के लिये गरीबों को बेदखल करके जमीन हथियाना और उसके खिलाफ 'रंगभूमि' उपन्यास के सूरदास के संघर्ष पर जब कोई विचार करता है तो यह परिस्थिति आज और भी सही प्रतीत होती है।

अपने आपको अपनी हैसियत से अधिक अमीर दिखाने के दुराग्रह से 'गबन' उपन्यास का रामनाथ सरकारी धन में घपला करके अपराधी बन जाता है और फिर उसकी मुसीबतों का कहीं अंत नहीं होता। महिलाओं में गहनों की असीम लालसा इन दिनों एक आम बीमारी बन गई है। यही असली मुसीबत की जड़ है। रिश्वत हमारे जीवन का एक अंग बन चुकी है और कदम–कदम पर इसका सामना करना पड़ता है। यह कोई नई बात नहीं रही। यह पहले भी थी। प्रेमचंद की कहानी 'नमक का दरोगा' अभी भी हमारे जीवन को दर्शाती है क्योंकि अभी भी यह एक कड़वी सच्चाई है।

सारांशतः प्रेमचंद आज भी हमारे उतने ही प्रासंगिक है जितना अपने जीवन काल में थे। इसका सबसे बड़ा कारण उनके साहित्य समाज के आधारभूत ढांचों की व्याख्या है। प्रेमचंद नवयुग के प्रवर्तक ही नहीं उसके सुधारक और सृष्टा भी थे। उनके साहित्य में समाज के लिए संदेश है।

एक आदर्शवादी चिंतक होने के कारण उनकी रचनाओं में समाज के ढकोसलों तथा रूढ़ीवादी परम्पराओं पर तीखा प्रहार दिखाई देता है। वस्तुतः प्रेमचंद एक महान साहित्यकार थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. श्रीमती सुशीला जोशी, पत्रकारिता विधाएं एवं विविध आयाम
2. डॉ0 आदर्श शर्मा, नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता
3. प्रेमचन्द जयन्ती समारोह स्मारिका, 2016, 2017 के अंक
4. दैनिक जागरण (पटना), दैनिक हिन्दुस्तान (पटना), प्रभात खबर (गया), 31.07.2015

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

कन्या भ्रूण हत्या : एक सामाजिक समस्या

डॉ0 बृजेश पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
श्री अग्रसेन कन्या पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी

भारतीय धर्म संस्कृति में स्त्री को पूज्य और लक्ष्मी स्वरूपा माना गया है। कन्यादान महादान कहा गया है जिसके बिना स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती परन्तु इसका एक यथार्थ पहलू यह भी है जहाँ स्त्री को इतना ऊँचा दर्जा प्रदान किया है वहीं उसका तरह–तरह से शारीरिक, मानसिक उत्पीड़न भी किया जा रहा है। कहीं कन्या भ्रूण हत्या के रूप में, कहीं दहेज उत्पीड़न के रूप में, कहीं दोयम दर्जे के प्राणी के रूप में, कहीं यौन शोषण के रूप में। उस सत्य को झुठलाता प्रतीत होता है जो स्त्री को पूज्यनीय प्रतिस्थापित करने की बात करते हैं। जब परिवार में एक कन्या का जन्म होता है तो परिवारजन और निकट सम्बन्धियों की प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार होती है। जो होना था सो हो गया, लड़का–लड़की दो ही तो होते हैं, क्या अन्तर है, लड़कियाँ माँ–बाप का ज्यादा ख्याल रखती हैं, दहेज की तैयारी करो, अगली बार लड़का हो जायेगा। सृष्टि का आधार स्त्री है प्रकृति से उसे ही नया जीवन सृजित करने का अधिकार प्राप्त है। लेकिन जब यह पता चलता है कि होने वाला गर्भ कन्या शिशु है तो सारा उत्साह, उमंग, खुशी अवसाद में परिवर्तित हो जाता है। इसके विपरीत जब पुत्र का जन्म होता है तो तुरन्त बधाइयों का और खुशियों का दौर शुरू हो जाता है। ऐसा भी देखने में आता है कि पुत्र की चाह में दम्पत्तियाँ सात–आठ लड़कियाँ पैदा करते जाते हैं, लेकिन सात पुत्रों के बाद कोई पुत्री के जन्म की कल्पना अपने हृदय में करे कम ही दिखाई पड़ते हैं।

स्त्री–पुरुष लिंग अनुपात में जो कमी आज द्रष्टव्य है उसका कारण स्वास्थ्य और कानून की समस्या ही नहीं है बल्कि यह एक ज्वलंत सामाजिक समस्या भी बन चुकी है। समाज में जिस तरह से लड़कियों के जन्म पर प्रतिबंध लगाये जा रहे हैं वह एक बीमार, कुत्सिल, सड़ी मानसिकता एवं दो मुही सामाजिक सांस्कृतिक संरचना की परिचायक है जो एक तरफ तो स्त्री को पूज्यनीय देवी स्वरूपा मानने का ढोंग करता है दूसरी तरफ स्वयं उसके अस्तित्व को समाप्त करने की साजिश कर रहे हैं।

''राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्षा गिरिजा व्यास के अनुसार, लड़कियों की घटती हुई दर को देखते हुए चेतने की जरूरत है। आज शादी के लिए लड़की खरीदने की नौबत आ गयी है, यदि लड़कियाँ पैदा ना होने दी गयी, तो 5 साल बाद कितनी भयावह स्थिति पैदा हो जायेगी, हमें इसे बड़ी समस्या के रूप में देखना चाहिए।'' लड़कियों की घटती संख्या भविष्य में आने वाले खतरों की निशानदेही है। यह समस्या हमारे समाज के सम्पूर्ण ढाँचे को नष्ट कर जायेगा, क्योंकि आज लिंगानुपात 1000 लड़कों पर 927 लड़कियों का है। अनेकानेक पारिवारिक सामाजिक दबावों के कारण एक स्त्री स्वयं भी तो यह निरंकुश फैसला नहीं ले सकती जिसका कि उसे कानूनी अधिकार प्राप्त है।

इस सन्दर्भ में एक अत्यन्त आश्चर्यजनक तथ्य है कि कन्या भ्रूण हत्या सर्वाधिक पढ़े–लिखे परिवार और संभ्रान्त लोगों में ज्यादा दिखाई पड़ता है क्योंकि ऐसे परिवार जानते हैं कि एम.टी.पी. एक्ट 1971 के अन्तर्गत गर्भपात कानूनी रूप से वैध है। शिक्षित लोग इस एक्ट को तोड़–मरोड़ कर

उन स्थितियों एवं परिस्थितियों का दुरुपयोग करते हैं जिनके अन्तर्गत इस एक्ट में गर्भपात का प्रावधान की आड़ में परिवार नियोजन की दुहाई देकर पुरुष स्त्री के कन्या भ्रूण की हत्या करवा देता है संयोग से परिवार नियोजन की छूट भी पी.एन. डी.टी. एक्ट में मौजूद है। भ्रूण परीक्षण के दौरान कानून की यही रियायत बालिका भ्रूण की मौत का कारण बन जाती है।

आंकड़ों को देखने से स्पष्ट होता है कि 1981–91 के बीच लगभग 37 हजार लड़कियों को पैदा होने से रोका गया। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि 2011 तक 2 करोड़ 30 लड़कों को जीवन संगनी लड़कियाँ उपलब्ध नहीं होंगी। राजस्थान में कुछ जिले ऐसे हैं जहाँ के गाँवों में आज भी लड़कियाँ शादी के लिए नहीं मिल रही हैं। उत्तर प्रदेश में पाँच लड़कों की शादी एक लड़की से इसी भयावह स्थिति को स्पष्ट करती है। हरियाणा के लगभग 12 जिले ऐसे हैं जहाँ लड़कियों का अकाल पड़ चुका है। कन्या भ्रूण हत्याओं से सर्वाधिक प्रभावित यह प्रदेश आज शादी के लिए लड़कियों की खरीद फरोख्त की स्थिति में है। वहाँ की महिलाएँ आज शारीरिक मानसिक हिंसा की शिकार हो रही हैं। आँकड़े यह भी दर्शाते हैं कि पंजाब और दिल्ली के दक्षिणी इलाकों में संभ्रान्त परिवार कन्या भ्रूण हत्या कराते रहने के कारण लिंगानुपात के अन्तर का शिकार हो चुके हैं।

भारतीय परिवार कल्याण संस्थान की एक रिपोर्ट पर ध्यान दें तो हमें पता चलेगा कि देश में प्रतिवर्ष लगभग 40 लाख गर्भपात कराये जाते हैं जिसमें 90 प्रतिशत असुरक्षित हाथों से कराये जाते हैं। इसका अर्थ लगभग 36 लाख महिलाएँ अवैध रूप से असुरक्षित क्लीनिकों में गर्भपात करवाती हैं तथा उनमें अनुमानतः 28 प्रतिशत कन्या भ्रूण होती हैं।

कन्या भ्रूण हत्या के पीछे एक कुत्सित सत्य यह है कि गरीबी के कारण नहीं बल्कि आर्थिक सम्पन्नता के कारण यह फलीभूत हो रहा है। क्योंकि गरीब आर्थिक विपन्न व्यक्ति ज्यादातर लड़के की उम्मीद में कन्या को जन्म देते चले जाते हैं लेकिन जो पढ़े हैं संभ्रान्त हैं वे जन्म से पहले ही आने वाली संतान का लिंग परीक्षण करवाकर भविष्य में आने वाली समस्याओं की अपने हिसाब से उपाय कर लेते हैं।

अन्त में एक यक्ष प्रश्न यह उठता है कि यदि महिलाओं के अस्तित्व पर इसी तरह संकट के बादल अप्रत्यक्ष रूप से मँडराते हैं तो वह दिन दूर नहीं जब समाज में भावनाओं का अत्यन्त कुत्सित स्वरूप खुलेआम दिखाई पड़ेगा कि यौन शोषण के रूप में, कहीं हत्या के रूप में, कहीं बलात्कार के रूप में, कहीं बहुपति विवाह के रूप में इत्यादि अनेकानेक विषमतायें समाज को चुनौती देने के लिए स्वयं आमंत्रित की जा रही हैं।

वास्तव में कन्या भ्रूण हत्याओं के पीछे न तो वे जाँच केन्द्र दोषी हैं न लड़की के माँ–बाप न ही वे परिवारजन जो लड़की को बोझ, पाप मानते हैं। कन्या भ्रूण हत्या के लिए वास्तव में यदि किसी को दोष दिया जाय तो वह है हमारी छोटी सोच, कुत्सित मानसिकता अप्रासंगिक मान्यताएँ और परम्पराएँ जो बेटे–बेटी में भयंकर अन्तर करने के लिए बाध्य करता है। जब ईश्वर ने सृष्टि रचते वक्त स्त्री–पुरुष में कोई भेदभाव नहीं किया तो हम केवल अपने स्वार्थ के लिए एवं झूठे आडम्बरों के वशीभूत होकर इस कुकृत्य को प्रोत्साहित करने के अधिकारी कैसे है? क्या स्त्री को केवल हम पत्नी के रूप में ही चाहते हैं बेटी के रूप में नहीं।

इस सन्दर्भ में कानून, सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों को कठोर कार्यवाही करने की आवश्यकता है वह भी व्यवहारिक रूप में न कि केवल सैद्धान्तिक रूप में।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. कान्ता भाटी, महिला उत्पीड़न तथा दहेज हत्या, प्वाइंटर पब्लिशर्स व्यास बिल्डिंग एस.एस. हाइवे, जयपुर (राजस्थान)।
2. भारत 2005 प्रकाश विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
3. चन्द्र मोहन अग्रवाल, भारतीय नारी : विविध आयाम दिल्ली इंडियन पब्लिशर्स, 2003.
4. वोल्सटन क्राफ्ट मेरी : स्त्री अधिकारों का औचित्य – साधन, नई दिल्ली।
5. राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श : हरियाणा आधार पब्लिशर्स, 2001.

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

राष्ट्र निर्माण और विकास में महिलाओं की भूमिका

डॉ0 प्रतिमा श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
सुधाकर महिला पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी

राष्ट्र निर्माण और विकास में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। किसी भी देश की प्रगति के लिए जरूरी है, उस देश का आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका, प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में नारी ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऋग्वेद और उपनिषद् जैसे ग्रंथ कई महिला साध्वियों और सन्तों के बारे में बताते हैं, जिनमें गार्गी और मैत्रेयी नाम उल्लेखनीय है। नारी विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि हे। नारी प्रकृति एवं ईश्वर द्वारा प्रदत्त अद्भुत पवित्र साध्य है, जिसके सामने ईश्वर भी नतमस्तक हो जाता है। नारी शक्ति के इर्द–गिर्द सूर्य और अन्य ग्रहों की भाँति अनेक प्रकार के सद्गुण विद्यमान रहते हैं। जैसे–ममता, स्नेह, कुशलता, विश्वास, प्रेम, करुणा, सहिष्णुता इत्यादि। नारी अपने अस्तित्व की स्वतंत्रता को कायम रखते हुए वह पुरुषों से भी चार कदम आगे निकल गयी है। संकीर्णता जात–पात, धार्मिक कट्टरता, भेदभाव, मानसिक गुलामी की जंजीरों को तोड़कर महिलाओं ने देश को एक नई सोच एवं नया विचार प्रदान किया है, महिलाओं के इस सतत् योगदान को हम कुछ बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

1. **माँ के रूप में योगदान –** महिलाओं ने इस जगत में माँ के रूप में अपनी सर्वोपति भूमिका को निभाते हुए राष्ट्र निर्माण और विकास में अपने विशेष दायित्वों का निर्वहन किया है, माँ के रूप में बच्चों को जन्म देकर, उसका पालन–पोषण करते हुए उसमें संस्कार और सद्गुणों का विकास करती है तथा राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी को सुनिश्चित करती है, जिससे राष्ट्र निर्माण और विकास निर्बाध गति से होता रहे। नेपोलियन बोनापार्ट ने माँ की गरिमा को समझते हुए कहा था कि मुझे एक योग्य माता दो, मैं तुम्हें एक योग्य राष्ट्र दूँगा। इसके अतिरिक्त वीर भगत सिंह, चन्द्रशेखर, विवेकानन्द जैसी विभूतियों का देशहित में अवतार 'माँ' के स्वरूप की ही देन है। जीजाबाई, पन्नाधाय जयवंताबाई जैसी अनेक माताओं का त्याग, समर्पण और बलिदान आज भी इतिहास के पन्नों पर स्वर्णिम रूप में अंकित है। अतः राष्ट्र के निर्माण और विकास में 'माँ' का अतुलनीय योगदान छिपा है।
2. **पत्नी के रूप में योगदान** – पत्नी के रूप में भी महिला की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सदियों से देखने में आया है कि जब किसी भी देश पर संकट आया है, तो पत्नी अपने पति के माथे पर तिलक लगाकर उसे राष्ट्र हित के लिए रणभूमि में भेजती है, पति के विकास के पीछे पत्नी का बहुत बड़ा योगदान होता है। उदाहरण के लिए, तुलसीदास जी को आध्यात्मिक चेतना प्रदान करने में उनकी पत्नी 'रत्नावली' का ही बुद्धि चातुर्य था। पत्नी अपने पति को भ्रष्टाचार, बेईमानी, गबन जैसे कुकृत्यों से पत्नी ही दूर रखती है।
3. **गृहिणी के रूप में योगदान** – भारतीय समाज में महिलाएँ परिवार की मुख्य 'धुरी' होती है जोकि एक गृहिणी के रूप में राष्ट्र निर्माण और विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है, एक गृहणी के रूप में वह सम्पूर्ण परिवार का सुचारु रूप से संचालन करती है। वर्ष 1930, 1998, 2008 और 2014 की आई वैश्विक आर्थिक मंदी से सभी देश ग्रसित हुए परन्तु

भारत नहीं क्योंकि भारतीय महिलाओं की प्रवृत्ति ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बचाया, ऐसा ही उदाहरण 2016 की नोटबन्दी के दौरान देखने को मिला। इसी के साथ 65 प्रतिशत महिलाएँ कृषि, पशुपालन, हस्तकला इत्यादि के द्वारा विकास के कार्यों को गति प्रदान करती हैं। अतः यह राष्ट्र निर्माण और विकास का ही हिस्सा है।

4. **शैक्षिक–धार्मिक योगदान** – महिलाओं के सामाजिक–शैक्षिक धार्मिक कार्य व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को सशक्त बनाते हैं, एक शिक्षिका के रूप में 'माँ' बच्चे की प्रथम शिक्षिका होती है, जो बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए उत्तरदायी है। जब यह शिक्षिका परिवार से निकलकर समाज में शिक्षा का दान करती है तो यह एक सर्वोत्तम कार्य हो जाता है। वैदिक सभ्यता की मैत्रेयी , गार्गी, लोपामुद्रा, घोषा और विदुषी नामक महिलाएँ शिक्षा के क्षेत्र में योगदान हेतु पूजनीय हैं। देश की प्रथम शिक्षिका 'सावित्रीबाई फुले' एक अनुकरणीय उदाहरण हैं, जिन्होंने राष्ट्र निर्माण और विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया है। कुलसुम जे. सायानी ने 1957 में यूनेस्को के तत्त्वावधान में हुए प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया।
5. **संस्कृति, संस्कार और परम्पराओं की संरक्षिका के रूप में योगदान** – महिलाएँ ही संस्कृति, संस्कार और परम्पराओं की संरक्षिका होती हैं, वे पीढ़ी–दर–पीढ़ी इनका संचारण और संरक्षण करती रहती हैं। भारत को विश्व गुरु का दर्जा दिलाने में महिलाओं की ही भूमिका होती है। इसी कारण भारत को संस्कृति और परम्पराओं का देश कहा जाता है।
6. **वैज्ञानिक के रूप में योगदान** – आत्म विश्वास, मेहनत, मृजनशीलता और बुद्धि–कौशल के कारण महिलाओं के लिए वैज्ञानिक खोजें और अनुसंधान का क्षेत्र अछूता नहीं रहा है। आज महिलाएँ रक्षा विशेषज्ञ और वैज्ञानिकों के रूप में अपना योगदान राष्ट्र निर्माण के विकास में दे रही हैं। डॉ0 टेसी थॉमस ने अग्नि–5 मिसाइलों की योजना में प्रतिनिधित्व करते हुए ''भारत की मिसाइल वुमैन और अग्निपुत्री'' का सम्मान हासिल किया है। ऐसी बहुत सी महिलाएँ वैज्ञानिक विकास में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हुए राष्ट्र निर्माण और विकास में योगदान दे रही हैं।
7. **साहित्यिक योगदान** – साहित्य के माध्यम से राष्ट्र निर्माण और विकास होता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य के द्वारा न केवल बुद्धि कौशल वरन् व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास किया जा सकता है। विशिष्ट साहित्य समाज के नागरिकों में उत्तम गुणों का संचार करता है तथा राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान दिलाता है। भारतीय साहित्य क्षेत्र में महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान से लेकर नई पीढ़ी की महिला रचनाकारों में भी राष्ट्र के प्रति आस्था के भाव नागरिकों के लिए चेतना के स्वर प्रस्फुटित होते आये हैं। कहानी के क्षेत्र में मृदुला गर्ग, मैत्रीय पुष्पा, मन्नू भंडारी, अनिता देसाई सहित अनेक महिला रचनाकारों ने विभिन्न भाषाओं में अपनी रचनाओं में भारतीय जनजीवन, मानवीय संवेदनाओं का गहन चित्रण कर देश–विदेश में भारत का मस्तक ऊँचा किया है।
8. **राजनैतिक एवं सामाजिक सुधारों के रूप में योगदान** – विजय लक्ष्मी पंडित ने 1946, 1947, 1950 और 1963 में संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का प्रतिनिधित्व किया। 1953–54 में वह संयुक्त राष्ट्र महासभा की सदस्या भी रहीं। 1962–64 में महाराष्ट्र की राज्यपाल और 1964–66 तक लोकसभा की सदस्य रहीं। महिलाओं ने राजनीतिक विकास में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी दी। इसके अतिरिक्त सरोजिनी नायडू, सुचेता, कृपलानी, इन्दिरा गाँधी, सुषमा स्वराज इत्यादि अनेक महिलाओं ने अपनी राजनीतिक प्रतिभा का प्रयोग कर राष्ट्र निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान

दिया। कुलसुम जे. सायानी को 1959 में समाज सेवा के लिए पद्मश्री तथा 1969 में नेहरू–साक्षरता पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

9. **स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान** – भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं ने भागीदारी सुनिश्चित कर भारत का नव–निर्माण करवाया। अनेक महिलाओं ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर महिलाओं ने अपना योगदान दिया। कैप्टन लक्ष्मी सहगल, अरुणा आसफ अली, दुर्गा भाभी, मैडम भीकाजी कामा, सरोजिनी नायडू और एनी बेसेण्ट जैसी महिलाओं ने राष्ट्र निर्माण और विकास में अपना अतुलनीय योगदान दिया।
10. **आर्थिक क्षेत्र में योगदान –** वर्तमान समय में कृषि आधारित उद्योगों में आज 89.5 प्रतिशत महिला श्रम शक्ति कृषि के क्षेत्र में भारत में कुल श्रमिकों में 55 प्रतिशत 66 प्रतिशत महिला श्रमिक हैं, इतना ही नहीं चाहे वह आधुनिक उद्योग हो या परम्परागत उद्योग हो, आज महिलाएँ हर क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। पेप्सिको के सी.ई.ओ. इन्दिरा नूई हो या आई.सी.आई. सी.आई. बैंक की इन्दिरा कोचर इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई और देश को गौरव प्रदान किया और भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पादन में 25 प्रतिशत से ज्यादा का योगदान दिया।
11. **पर्यावरण के क्षेत्र में योगदान** – पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में भी महिलाओं का अतुलनीय योगदान रहा है। इसका उदाहरण चिपको आन्दोलन है जो कि जंगलों के विनाश के विराल सफल आन्दोलन के रूप में पूरी दुनिया में सराहा जाता है। पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली निरक्षर महिलाएँ स्वतः स्फूर्त एवं अहिंसक आन्दोलन विश्व के इतिहास में एक अनूठी देन है। इस आन्दोलन की प्रमुख 'गायत्री देवी' हैं। इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश में देवदार के वृक्ष काटे जाने पर महिलाएँ छोटे–छोटे गुट बनाकर आगे रही हैं। 'नर्मदा बचाओ' आन्दोलन को लेकर मेधा पाटकर काफी चर्चित रही। इस आन्दोलन के लिए इन्हें जेल तक जाना पड़ा। पर्यावरण संरक्षण में सक्रिय भूमिका के कारण इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय 'ग्रीन रिबन' पुरस्कार दिया गया है। सुश्री वन्दना शिवा ने भी पर्यावरण संरक्षण में अतुलनीय योगदान दिया है। 1993 के 'राइट लिवली हुड' अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।
12. **खेल–कूद में महिलाओं का योगदान –** खेल–कूद में भी महिलाएँ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महिलाओं ने देश का नाम उज्जवल किया, जैसे–साइना नेहवाल, मैरी काम, सानिया मिर्जा ने देश का मस्तक दुनिया के खेल मंच पर ऊँचा किया। वर्तमान में हिमादास ने एक स्पर्धा में 6 स्वर्ण पदक जीता। भारत के गौरव में वृद्धि करते हुए पी0वी0 सिन्धु ने बैडमिन्टन की विश्व चैम्पियनशिप में स्वर्ण पदक जीतकर इतिहास रचा।
13. **प्रशासनिक क्षेत्र में योगदान –** किसी भी राष्ट्र का प्रशासन उस राष्ट्र की प्रगति और विकास का सूचक होता है। प्रशासनिक दक्षता और कुशलता यदि सुदृढ़ है तो राष्ट्र की प्रगति और विकास सुनिश्चित है। प्रशासनिक क्षेत्र भी महिलाओं से अछूता नहीं रहा है। इन्दिरा गाँधी देश की प्रथम महिला प्रधानमंत्री के रूप में कार्यभार सँभाला, सरोजिनी नायडू उत्तर प्रदेश की प्रथम राज्यपाल रहीं, प्रतिभा पाटिल प्रथम महिला राष्ट्रपति, सुचेता कृपलानी उत्तर प्रदेश की प्रथम मुख्यमंत्री रहीं। चाहे वे आई0ए0एस0, आई.एफ.एस. और आई.पी.एस.। 5 अक्टूबर 1989 को केरल उच्च न्यायालय की भूतपूर्व न्यायाधीश एम फातिमा बीबी ने न्यायालय की प्रथम न्यायाधीश का पद सुशोभित किया। प्रथम आई.पी.एस. अधिकारी अन्ना रजम मल्होत्रा थी। इसके साथ ही पिछले 5 सालों में महिलाओं की हिस्सेदारी 25 प्रतिशत बढ़ी है।

उपर्युक्त शीर्षक इस बात को स्पष्ट करते हैं कि राष्ट्र के समग्र विकास तथा उसके निर्माण में महिलाओं का लेखा–जोखा और उसके योगदान का दायरा असीमित है तथापित देश के समुचित विकास और समाज में अपनी भागीदारी को सशक्त ढंग से पूरा किया है। संकीर्णता, जात–पात, धार्मिक कट्टरता, भेदभाव, मानसिक गुलामी की जंजीरों को तोड़कर महिलाओं ने देश को एक नई सोच, नया विचार प्रदान किया है।

सन्दर्भ :–

1. मोती रानी पुष्पा, महिला विकास की नई दिशाये।
2. श्रीवास्तव सुधा रानी, भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति
3. डॉ. आशुरानी, महिला विकास कार्यक्रम
4. डॉ. अमिता सिंह, लिंग एवं समाज

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

भारतीय श्रम कानूनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. अजय कुमार
श्रम एवं समाज कल्याण विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविधलय, आरा

संसार में श्रम कानून 18वीं शताब्दी में आरंभ होने वाली औद्योगिक क्रांति का परिणाम है जब उद्योगों में भारी मात्रा में श्रमिकों को लगाना अनिवार्य हो गया था तथा मालिक और मजदूर के बीच के संबंधों के बारे में पारम्परिक व्यवस्था अपर्याप्त सिद्ध हो गई थी। उस समय खदानों में एवं औद्योगिक उत्पादन की अत्याधिक मात्र के कारण श्रमिकों को सामान्य सुरक्षा मिलना कठिन हो गया था। दूसरी ओर समाज में नई चेतना और राजनीतिक कारणों से नई जागृति ने जन्म लिया था।

श्रम कानूनों की वर्तमान स्तर की प्रगति धीरे–धीरे हुई थी क्योंकि संसार भर में श्रम कल्याण संबंधी स्वीकार्यता 20 वीं शताब्दी से पहले संभव नहीं हो पाई थी। इस बारे में शुरूआत ब्रिटिश हेल्थ एण्ड मोरल्स ऑफ अपरेंटिस एक्ट 1802 में हुई थी। इसी प्रकार की कार्यवाही ज्यूरिच में 1815 में और फ्रांस में 1841 में हुई थी। 1848 तक स्विट्जर लैंड में काम के घंटों की सीमा तय हुई थी और 1883 में जर्मनी में श्रमिकों के बीमा और मुआवजे की व्यवस्था हो पाई थी। उधर 1890 के बाद में न्यूजीलैण्ड में पंचफैसले की व्यवस्था हो गई थी। अमेरीका में श्रम कानूनों की पहल 19वीं शताब्दी के अंत तक हो पाई थी। रूस में 1917 के अक्टूबर क्रांति से पहले श्रम कानून न के बराबर थे।

भारत 18वीं शताब्दी में न केवल कृषि प्रधान देश था वरन् कारखाने के उत्पादन में भी ख्याति प्राप्त देश था। एशिया और यूरोप के बाजार भारत की मंडियों में बने सामान से भरे रहते थे। अंग्रेजों ने इस उत्पादन को रोका था क्योंकि वे चाहते थे कि भारत केवल कच्चा माल देने वाला देश बन कर ही रहे। अंग्रेजों को इस नीति के कारण राष्ट्रीय भावना पनपी थी और स्वदेशी क्रांति ने जन्म लिया था।

भारत में श्रम कानूनों की पहल चायबागानों में 1863 में हुई थी। परन्तु उस समय जोर इस बात पर दिया गया था कि मालिकों के अधिकार सुरक्षित रखे जाए।

भारत में पहले पहल माईन्स एक्ट 1923 में और फैक्टरी एक्ट 1934 में बना था जिनसे श्रमिकों के हितों की काफी रक्षा हुई। अब तक कई कानून बन चुके है जिनसे श्रमिकों के हितों की रक्षा हुई है, उद्योगों में उत्पादन बढ़ा है तथा देश की आर्थिक दशा भी सुधरी है।

अनेकानेक ऐसे विधान है जो कुछ विशिष्ट उद्योगों से संबंधित रोजगार शर्तो, कार्य के माहौल और अन्य कल्याण की अपेक्षओं को विनियमित करते है। ये अधिनियम फैक्टरी और कार्यशलाओं, खान और खनिजों, बागानों, दुकानों और प्रतिष्ठानों तथा परिवहनों से संबंधित है। कुछ मुख्य विधान निम्नलिखित हैः–

0. अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 146 इसका अधिनियम अभ्रक खनन उद्योग में लगे हुए श्रमिकों के कल्याण में सुधार करने के लिए कार्यकलापों का वित्तपोषण करने हेतु निधि का गठन करने हेतु किया गया है।

0. फैक्टरी अधिनियम, 1948 मुख्य विधान है जिसका अधिनियम फैक्टरियों में कार्य परिस्थितियों को विनियमित करने के लिये किया गया है। अधिनियम के अनुसार फैक्टरी का अर्थ है कोई भी परिसर उसका अहाता सहित।
1. जहॉ 10 या अधिक कामगार कार्य कर रहे है या पहले बारह माह के किसी भी दिन कार्य कर रहे थे और जिसके किसी भी भाग में विद्युत का सहायता में विनिर्माण का कार्य किया जा रहा है।
2. जहॉ 20 या इससे अधिक कामगार कार्य कर रहे है या पहले बारह मास के किसी भी दिन कार्य कर रहे थे और उसके किसी विभाग में विद्युत की सहायता के बगैर विनिर्माण की प्रक्रिया की जाती है परन्तु इसमें खान शामिल नहीं है।अधिकतर अधिनियम श्रम और रोजगार मंत्रालय द्वारा इसके फैक्टरी परामर्श सेवा एवं श्रम संस्थान महानिदेशलय के जरिए प्रशासित होता है और राज्य सरकारों के द्वारा अपने फैक्टरी निरीक्षालय के माध्यम से प्रशासित होता है।
3. डी जी एफ एस एल आई फैक्टरियों और गोदी में व्यावसायिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य राष्ट्रीय नीतियां तैयार करने में मंत्रालय के लिए तकनीकी कार्य करता है।

इसके अतिरिक्त कई अन्य प्रकार के अधिनियम है जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

0. बागान श्रम अधिनियम, 1951 बागान श्रमिकों के कल्याण की व्यवस्था करता है और बागानों में कार्य परिस्थितियों को विनियमित करता है। अधिनियम के अनुसार बागान शब्द का अर्थ है कोई भी बागान जिसके लिए यह अधिनियम चाहे पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से प्रयोज्य होता है और इसमें कार्यालय, अस्पताल, दवाखाना, स्कूल और अन्य कोई परिसर ऐसे बागानों में संबंधित किसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होता है शामिल है परन्तु इसमें परिसर में कोई फैक्टरी शामिल नहीं होती है जिसके लिए फैक्टरी अधिनियम 1948 के प्रावधान प्रयोजन होते है। यह अधिनियम श्रम मंत्रालय द्वारा अपने औद्योगिक सम्पर्क प्रभाग के माध्यमसे प्रशासित होता है। प्रभाग का संबंध विवादों के निपटाने और औद्योगिक संबंध श्रम कानूनों में संधोधन करने के लिए संस्थगत ढांचा सुधारने से है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि देश को स्थिर, सम्मानित और सक्षम कार्य बल जो शोषण मुक्त हो और उच्च स्तरीय प्रतिफल देने में सक्षम हो, दिलाने के प्रयास में केन्द्रीय औद्योगिक संबंध तंत्र के निकट समन्वयन में कार्य करता है।
0. खान अधिनियम, 1952 में कोयला अलौह धातु एवं तेल खानों में स्वास्थ्य, सुरक्षा और कामगारों के कल्याण संबंधी उपयों के लिए प्रावधान है। अधिनियम के अनुसार शब्द ''खान'' का अर्थ है कोई खुदाई जहॉ खनिज की खोज के उद्देश्य से कोई कार्य या खनिज प्राप्त किया गया हो या किया जा रहा है और इसमें सभी बोरिंग, बोर हाल्स, तेल का कुंआ और अनिवार्य रूप से कच्चा तेल शामिल हो शाफ्ट, खुली खदान का कार्य कन्वेयर्स या वायु रोपवेज, यान, मशनरी कार्य, रेलवे, ट्रामवेज, स्लाइडिंग कार्यशाला, विद्युत केन्द्र आदि शामिल है या कोई भी परिसर जो खनन कार्य से संबंधित है और जो खनन क्षेत्र के निकट या खनन क्षेत्र में हो, शामिल है। अधिनियम श्रम और रोजगार मंत्रालय द्वारा खान सुरक्षा महानिशालय (डी0जी0एम0) के माध्यम से प्रकाशित होता है। भारत सरकार में डी0जी0एम0 एस0 खानों और तेल क्षेत्रों ं सुरक्षा के लिए विनियामक एजेंसी है। यह निरीक्षण और

पूछ–ताछ करता है। कामगारों की सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं पर गोष्ठिया सम्मेलनों का आयोजन करता है।

0. मोटर परिवर कामगार अधिनियम 1961 की अधिनियम मोटर परिवहन कामगों के कल्याण और उनके कार्यो की परिस्थिति को विनियमित करने की व्यवस्था करने के लिए किया गया है। यह प्रत्येक मोटर परिवहन उपक्रम के लिए लागू होता है। जहॉ पांच या अधिक मोटर परिवहन कामगारों से कम कामगार कार्य करते है के लिए इस अधिनियम के सभी या किसी प्रावधान को लागू कर सकती है। अधिनियम के अनुसार मोटर परिवहन उपक्रम का अर्थ है' ' ऐसा उपक्रम जो सवारी या माल ढोने के कार्य में या दोनों किराए पर भाड़े में या पुरस्कार पर करता है, इसमें निजी वाहन शामिल है।

मोटर परिवहन उपक्रम का प्रत्येक नियोक्ता जिसके लिए यह अधिनियम लागू होता है। इस अधिनियम के तहत उपक्रम का पंजीकरण कराना होगा। कोई व्यस्क मोटर परिवहन कामगार को किसी भी दिन आठ घंटे से अधिक या सप्ताह में अड़तालिस घंटे से अधिक कार्य करने की अनुमति नहीं है। किसी किशोर की नियुक्त नहीं की जाएगी या उसके लिए दिन में छह घंटे से जिसमें आराम के अंतराल आधे घंटे के साथ 10 बजे से 6 बजे सुबह शामिल है। इससे अधिक किसी मोटर परिवहन कामगार के रूप में करना अपेक्षित नहीं है।ऐसे प्रतिष्ठानों में जहॉ सरकार उपयुक्त सरकार है अधिनियम के प्रवर्तन की जिम्मेदारी मुख्य श्रम आयुक्त (केन्द्रीय) के कार्यालय पर होती है और राज्य की परिधि के अन्तर्गत स्थित प्रतिष्ठानों के लिए संबंधित राज्य सरकारों पर होती है। असंगठित क्षेत्र में कामगारों को सामाजिक सहायता के उपाय प्रदान करने के लिए भी श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के अधीन पांच कल्याणकारी निधिया स्थगित की गई है। इन निधियों का लक्ष्य कामगारों को आयास, चिकित्सा, देखभाल शैक्षिक और मनोरंजक सुविधाए प्रदान करना है जो थोड़ी उद्योग कुछ गैर कोयला खानों में नियुक्त है और सिनेमा कामगार है । ऐसी निधियों का वित पोषण संबंधित उपकर/निधि अधिनियम के तहत लगाए गए उपकर से प्राप्त लाभ से किया जाता है। इस प्रकार अधिनियम निम्नलिखित हैः––संविदा श्रम (विनियमन और निरस्तीकरण) अधिनियम, 1970 का अधिनियम संविदा श्रम की नियुक्ति विनियमित करने के लिए किया गया था ताकि उसे प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त श्रमिक के समकक्ष बनाया जा सके जो कार्य की परिस्थितियों एवं कुछ अन्य लाभों के संबंध में होता है। संविदा श्रम का अभिप्राय '' प्रयोक्ता उद्यमों के लिए सविदाकार द्वारा लगाए गए कामगार।'' ये कामगार साधारणतः वार्षिक कार्यो निर्माण, उद्योग, पतनों और गोदी, तेल क्षेत्रों फैक्टरियों, रेलवे, जहाजरानी, एयरलाइन्स सड़क परिवहर आदि में लगाए जाते है। अधिनियम का कार्यान्वयन केन्द्र और राज्य सरकारों दोनों के द्वारा किया जाता है । केन्द्र सरकार का क्षेत्राधिकार रेल बैंकों खानों आदि पर है और राज्य सरकारों का क्षत्राधिकार उस राज्य में स्थित यूनिटी पर है। केन्द्रीय परिधि में केन्द्रीय औद्योगिक संबंध मशीनरी (सी आई आर एम) जिसका अध्ययन के प्रावधानों और उसके तहत बनाए नियमों का प्रवर्तन करने की जिम्मेवारी सौपी गई है।

0. चूना पत्थर और डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम चूना पत्थर और डोलोमाइट खानों में नियुक्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए कार्यकलापों का निधि पोषण करने हेतू चूना पत्थर और डोलोमाइट पर उपकरन लगाने और उसका संग्रहण की व्यवस्था करने के लिए किया गया है।

0. लौह अयस्क खान, मैगनीज अयस्क खान और क्रीम अयस्क खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम 1976 इसका अधिनियम लौह अयस्क खानों, मैगनीज अयस्क खानों और ग्रीम अयस्क खानों में नियुक्त व्यक्तियों के कल्याण सुधार करने वाले क्रियाकलापों का वित पोषण करने की व्यवस्था करने हेतु किया गया है।
0. बीड़ी कामगार कल्याण निधि अधिनियम 1976– इस अधिनियम के माध्यम से बीड़ी प्रतिष्ठानों में लगे व्यक्तियों के कल्याण तथा उनका स्तर सुधारने वाले उपायों की व्यवस्था करने के लिए किया गया है।
0. सिनेमा कामगार कल्याण निधि अधिनियम 1981– इसके द्वारा अधिनियम सिनेमा कामगारों का कल्याण करने वाले क्रियाकलापों के वित पोषण की व्यवस्था करने के लिए किया गया है।

उपर्युक्त अधिनियम यह व्यवस्था करते है कि संबंधित कामगारों के कल्याण की व्यवस्था करने के लिए अनिवार्य उपायों और सुविधाओं के संबंध में किये गए व्यय को पूरा करने के लिए निधि का प्रयोग केन्द्र सरकार द्वारा किया जाए।

0. भवन एवं अन्य कामगार (रोजगार और सेवा की परिस्थितियों का विनियमन) अधिनियम, 1996 का अधिनियम भवन और अन्य निर्माण कामगारों की नियुक्ति और कार्य की परिस्थितियों को विनियमित करने के लिए और उनकी सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याणकारी उपायों को विनियमित करने के लिए किया गया है। यह अधिनियम प्रत्येक प्रतिष्ठान के लिए प्रयोज्य है जिसमें दस या अधिक कामगार भवन या अन्य निर्माण कार्य में लगता है और ऐसी परियोजना के लिए जिसकी लागत 10 लाख रूपया से अधिक है इस अधिनियम में दुर्घटना , वृद्धावस्था, पेशन, मकान बनाने के लिए ऋण समूह बीमा के लिए प्रीमियम, शिक्षा चिकित्सा खर्च के लिए वित्तीय सहायता और मातृत्व लाभ के लिए कामगारों को तत्काल सहायता का प्रावधान निहित है। **औद्योगिक विवाद के कुछ मुख्य कारण इस प्रकार हैः––**
0. अधिक वेतन और भत्तों की मांग करना।
0. बोनस का भुगतान करने और उसकी दर निर्धारित करने की मांग करना।
0. सामाजिक सुरक्षा के लाभों को बढ़ाने की मांग करना।
0. कार्य की अच्छी और सुरक्षित दशाओं जिसमें कार्य दिवस के घंटे, मध्यावकाश और कार्य के बीच–बीच में अवकाश और शारीरिक श्रम के लिए परिवेश की मांग करना।
0. श्रम कल्याण और अन्य लाभों में वृद्धि करने की मांग करना। उदाहरणार्थ, अच्छी कैंटीन, विश्राम, मनोरंजन और आवास की सुविधा, दूरवर्ती संस्थाओं से आने–जाने की यात्रा की व्यवस्था करना आदि।
0. इसके अलावा, खराब कार्मिक प्रबंध, परस्पर विधायी उपाय एवं सरकारी नीतियों और मनोवैज्ञानिक घटकों जैसे कि कर्मचारी द्वारा उसकी आत्माभिव्यक्ति, व्यक्तिगत उपलब्धि और उन्नति की मुल आकांक्षा की तुष्टि करने के लिए अवसर प्रदान करने से इन्कार करना आदि के कारण भी श्रमिकों संबंधी समस्याएं हो सकती है।भारत में औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 सभी औद्योगिक विवादों की जांच पड़ताल एवं निपटाव करने के लिए एक प्रमुख विधान है। इस अधिनियम में उन संभावनाओं को हड़ताल अथवा तालाबंदी की जा सकती है, उन्हें अवैध अथवा गैर–कानूनी घोषित किया जा सकता है, कर्मचारी की जर्बदस्ती कामबंदी, छटनी उसे सेवामुक्त करना अथवा बर्खास्त करने की दशाओं, उन परिस्थितियों

जिनमें औद्योगिक इकाई को बंद किया जा सकता है और औद्योगिक कर्मचारियों तथा नियोजकों से जुड़े अन्य कई मामलों का उल्लेख किया गया है। यह अधिनियम श्रम मंत्रालय द्वारा उसके औद्योगिक संबंध प्रभाग के माध्यम से प्रशासित किया जाता है। यह निम्नलिखित के माध्यम से सद्भावपूर्ण औद्योगिक संबंधों को सुनिश्चित करता हैः––

0. केन्द्रीय क्षेत्र में औधोगिक संबंधों की निगरानी।
0. विवादों का निपटान करने के लिए औद्योगिक विवादों में हस्तक्षेप मध्यस्थता और उनका समाधान करना।
0. हड़ताल और तालाबंदी को रोकने के लिए हड़ताल और तालाबंदी की संभावना की स्थिति में हस्तक्षेप।
0. व्यवस्थाओं और पंचाटो का कार्यान्वयन। अधिनियम के अनुसार, 'औधोगिक विवाद' शब्द का अर्थ है नियोजकों और नियोजकों के बीच, अथवा नियोजकों और कर्मचारियों के बीच, अथवा कर्मचारियों और कर्मचारियों के बीच किसी तरह का विवाद अथवा मतभेद जिसका संबंध नियोजन भिन्न मामले अथवा नियोजन की शर्त्तो अथवा स्विीकृत के श्रम की दशाओं से है। अधियिम के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैः––
0. औद्योगिक विवादों का न्यायसंगत उचित और शांतिपूर्ण ढंग से निपटारा करने के लिए एक उपयुक्त मशीनरी प्रदान करना।
0. नियोजक और कर्मचारियों के बीच मित्रता एवं अच्छे संबंध स्थापित करने और उन्हें कायम रखने के उपायों को बढ़ावा देना।
0. गैर कानूनी हड़तालों और तालाबंदी को रोकना।
0. कर्मचारियों को जर्बदस्ती कामबंदी, छटनी, गलत तरीके से बर्खास्तगी और उत्पीड़न से राहत प्रदान करना।
0. सामूहिक सौदाकारी को बढ़ावा देना। कर्मचारियों की दशा सुधारना।
0. अनुचित श्रम प्रणालियों को रोकना।

इस अधिनियम के तहत औद्योगिक विवादों के समाधान और निर्णय के लिए एक सार्वाधिक तंत्र का गठन किया गया है।यह अवलोकनीय है कि उपरोक्त अधिनियम मुख्यतः 1948 और 1996 के बीच के है। इसका अर्थ यह है कि भारत में इस प्रकार के अधिनियम केवल भारत की आजादी के बाद के ही है। यह भी उल्लेखनीय है कि जिस विषय संबंधी अधिनियम जिस वर्ष मे बने है उस वर्ष से पहले संबंधित क्षेत्र में कोई कानूनी व्यवस्था नहीं थी। इस बारे में भारतीय जाति व्यवस्था की पृष्ठभूमि में थोड़ा विचार कर लेना युक्तियुक्त होगा। भारत में श्रम कल्याण का विषय प्रकटतया मानवाध्किारों से संबंध रखता है। प्राचीनकाल से ही भारत में परस्पर विरोधी दो विचार धारायें प्रचलित रही है जो आपस में सदा से टकराती रही है। एक विचारधारा वेदमूलक है और दूसरी चंदविरोधी है। बेद मूलक है और दूसरी चंदविरोधी है। वेद मूलक विचारधारा समाज को चार वर्षो में बाटती है। ब्राहम्मण, क्षत्रिय बैश्य और शुद्र । पहले तीन वर्षो को द्विज कहा जाता है। इनकों बारे में यह माना जाता है कि वे वैदिक संस्कारों के माध्यम से दूसरा जन्म ले लेते है। शूद्र लोग वैदिक संस्कारों से बंचित है। इसलिये ये पशु तुल्य है और इसी कारण ये माव न होकर हर प्रकार के मानवाधिकारों से बंचित है। वर्ण व्यवस्था के अधीन द्विजो को ये कर्तव्य दिये गये है जिनका पालन करते हुए उन्हें कोई शारीरिक कष्ट नहीं होता। दूसरी ओर

शूद्रो को वे सब कार्य दिए गये है जिनमें उन्हें केवल शारीरिक कष्ट ही भोगने पड़ते है।

गौतम बुद्ध ने वैदिक व्यवस्था को नकारते हुए समाज के उक्त विभाजन को नहीं माना और यह प्रस्ताविक किया गया है कि वह संयम से काम लेते हुए जीवन को वैदिक रीति रिवाजों और सदाचार के अनुसार बिताते हुए यदि ब्राहम्मण है तो परतत्व में लीन हो जाये और यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य है तो अपने–अपने वर्ण के कर्तव्यों को निभाता हुआ अगले जन्म में ब्राहम्मणकुल में जन्म लेने को कामना करें ताकि उसे भी ब्राहम्मलौन होने का अवकसर प्राप्त हो सके। बुद्ध ने कहा कि जीवन में दुख है, दुख का कारण है और उस कारण को दूर करके निर्वाण को प्राप्त हो जाए।वर्ण–व्यवस्था के अनुसार शूद्र को श्रम करने का ही अधिकार है इसलिये श्रम कल्याण का कोई औचित्य नहीं है। इस दृष्टि से वैदिक कालीन भारत में श्रम कल्याण के चिन्तन के लिये कोई गुंजाइश ही नहीं थी। परन्तु पाश्चात्य देशों में जहां मुख्यतया ईसाई धर्म प्रचलित था इसलिये वहॉ चातुवर्ण्यम वाली विचारधारा का जन्म ही नहीं हुआ। उन देशों मे श्रमिक वर्ग औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पन्न हुआ था। इसी कारण में श्रम कानून और श्रम कल्याण की बात को सहज ही स्वीकार कर लिया गया।वर्ण–व्यवस्था के कारण ही भारत की आजादी की लड़ाई में शुद्रो की आजादी को और साधारण स्वतंत्रता सेनानियों का ध्यान ही नहीं गया। मैनें 2003 में छपी अपनी पुस्तक इण्डियन फ्रीडम स्ट्रगल न्यू इन्साइट में यह सिद्ध किया था कि भारत में अंग्रजी सरकार के लम्बे अरसे तक रहने का मुख्य कारण यह था कि वर्ण व्यवस्था के कर्णधारों ने अंग्रेजों के साथ यह समझौता कर रखा था कि यदि स्थानीय प्रशासन के स्तर पर द्विजो में ये अधिकार बांट दिए जाएं जो वर्ण व्यवस्था के अधिकारों के अनुरूप हो तो वे अंग्रेज जब तक चाहें राज कर सकते है।अंग्रेजों ने यह शर्त मान ली थी जिसके फलस्वरूप जब यथा समय अंग्रेज सरकार को अपने ही कारणों से देश को छोड़ कर जाने का प्रश्न उत्पन्न हुआ तो तत्कालीन कांग्रेस नेतृत्व ने केवल सता के पुराने ढरे पर ही स्थानान्तरण करने को कहा था। यदि डॉ, भीमराव अम्बेडकर ने गोलमेज कांफ्रेस में तत्कालीन 'डिप्रेस्ड क्लासेस' के लिए पृथक मताधिकार की मांग नहीं उठाई होती तो यह संभव था कि सता के बारे में यथास्थिति ही रह जाती और भारत में लोकतंत्र की स्थापना हो ही नहीं पाती और यदि ऐसा हो जाता तो शायद वर्तमान श्रम कानूनों की आवश्यकता उत्पन्न ही नहीं होती।

यदि डॉ. भीमरांव अम्बेडकर और हिन्दू नेतृत्व के बीच 1932 में पूना पैक्ट वाला समझौता नहीं होता तो यह भी संभव था कि उनकों भारत के संविधान के मुख्य निर्माता होने का गौरव भी प्राप्त नहीं होता और संविधान में मौलिक अधिकारों और श्रम कल्याण संबंधी धाराओं को भी स्थान न मिल पाता।

सन्दर्भ सूची–

1. आहूजा राम, **(**2006**),** सामाजिक समस्याएं , रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली
2. गिरी, वी0वी0, (1958), लेबर प्राब्लम इन इण्डियन इण्डस्ट्रीज– एशिया पब्लिशिंग हाउस
3. अक्सेना, आर0सी0(1962), श्रम समस्याएँ एवं समाज कल्याण
4. वॉल, एस. (1999), इनसाइक्लोपीडिया ऑफ चाइल्ड डेवलपमेन्ट, नई दिल्ली।

स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवाद

डॉ रश्मि नायक
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
सुधाकर महिला पी0जी0 कालेज, पाण्डेयपुर, वाराणसी

विवेकानन्द एक आध्यात्मवादी और महान सर्जनात्मक विभूति थे। भारत नैतिक तथा सामाजिक पुनरुद्धार के लिए उन्होनें एक अनुप्रेरित कार्यकर्ता के रुप में अपना सर्म्पूण जीवन खपा दिया। जहॉ राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन और गोखले का विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार के आने से भारत को लाभ होगा वहीं दयानन्द और गांधी की भॉति विवेकानन्द का विश्वास था कि भारत का पश्चिम के लिए एक विशिष्ट संन्देश हैं।

विवेकानन्द के दर्शन के तीन मुख्य स्रोत रहे –

1 वेदों तथा वेदान्तों की महान् परम्परा

2 स्वामी रामकृष्ण का सानिध्य

3 अपने जीवन का अनुभव।

इतिहास गवाह है कि साम्राज्यवाद, भौतिकवाद के सहारे अपने आप को विश्व शक्ति कहने वाले देशों का पतन हुआ है। भारत अपनी प्राचीन आध्यात्मिक शक्ति के साथ आज भी जीवन्त है। क्योंकि इसकी जड़ें आध्यात्मिकता में रही हैं वैसे भी पिछलें कुछ वर्षों में पूँजीवाद, उदारवाद और वैश्वीकरण से विश्व में उत्पन्न अनेक समस्याओं का समाधान भारतीय दर्शन में ढूढा जा रहा है।

युगों तक भारत शक्तिशाली बना रहा, पर शक्ति भारत का आदर्श कभी नहीं रही। कभी उसने अपनी शक्ति का प्रयोग अपने देश के बाहर जा कर किसी पर विजय प्राप्त करने में नहीं किया अपनी सीमाओं से सन्तुष्ट रहा कभी किसी अन्य देश से युद्ध नहीं किया, कभी भी साम्राज्यशाही की यश लोलुपता का यह शिकार नही हुआ, धन और शक्ति हिन्दू जाति की कभी भी प्ररेणा न बन सके।

यही एक ऐसा राष्ट्र है, मानववंशों में यही एक ऐसी जाति है जिसने श्रद्धापूर्वक सदैव यह विश्वास किया है कि यह जीवन वास्तविक नही, यह जीवन सत्य नही, सत्य तो परमात्मा है, धर्म है। हिन्दू का खाना धार्मिक, पीना धार्मिक, नींद धार्मिक वैवाहिक कार्यक्रम इन सबकी प्रेरणा धार्मिक है। आपने अन्यत्र कही ऐसा देश नही देखा होगा। इस देश की संजीवता और प्रेरणा धर्म है और क्योकि धर्म पर अभी आघात नही हुआ है इसलिए यह जाति जीवित है यह देश निष्प्राण नही है। रोम की प्रेरणा थी साम्राज्यलिप्सा, शक्ति विस्तार, यूनान की प्रेरणा थी बुद्धि, ज्योहि उस पर आघात हुआ। इन देशों की सभ्यताओं की इतिश्री हो गई।

हर एक राष्ट्र का विश्व के लिए एक संदेश व प्रेरणा होती है। जब तक उसकी प्रेरणा नष्ट नही हुई होती है संकट आने पर भी वह राष्ट्र नष्ट नहीं होती है। भारत की वह सजग सजीवता अभी भी आक्रान्त नही हुई तमाम विभिषिका जघन्य अपराध, भ्रष्ट्राचार, घृणास्पद घटनाओं अन्ध विश्वास एवं अनेक दुखों के बाद भी भारत पुरूष अभी भी जीवित हैं''।

विवेकानन्द की रचनाओं तथा भाषणो ने देश के राष्ट्रवाद की नींव को मजबूत किया। जब भारत का बौद्विक वर्ग पश्चिम का अनुकरण करने में व्यस्त था,उस समय विवेकानन्द जी ने

निर्भीकतापूर्वक घोषणा की, कि पश्चिम को भारत से बहुत कुछ सीखना हैं। हीगल की तरह इन्होनें भी माना कि हर देश का कोई न कोई सिद्वान्त अवश्य होता हैं। विवेकानन्द धर्म को भारत का प्रमुख तत्व मानते थे। उन्होंने राष्ट्रवाद के एक धार्मिक सिद्वान्त की नींव का निर्माण करने का कार्य किया। जिसे आगे चलकर विपिन चन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष ने आगे बढाया । उनका मानना था कि किसी भी देश का निर्माण उसके अतीत पर निर्भर होता हैं। अतीत की उपेक्षा करना राष्ट्र के जीवन का ही निषेध करने के समान है। उनके धर्म का तात्पर्य धर्मसंघो मतवादो अर्थात संर्कीणताओं से नही था बल्कि शाश्वत तत्व का साक्षात्कार करना था। उनकी दृष्टि में नेतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति के शाश्वत नियम ही धर्म है। उनका धर्म मानव सेवा था।

उनका सम्पूर्ण जीवन बौर व्यक्तित्व भारतीय चीजो के प्रति प्रेम बौर सम्मान का जीवन्त उदाहरण था । उन्होनें कभी भी प्रत्यक्ष रुप से स्वतन्त्रता के लिए संर्घष नही किया लेकिन वे अप्रत्यक्ष रुप से विदेशी आधिपत्य के विरुद्व विद्रोह के स्पष्ट प्रतीक बन गये। उनके ओजस्वी भाषणों ने भारतीयो में राष्ट्रवाद का संचार किया। और आज भी इनके व्कतव्य युवाओं के लिए प्रेरणास्त्रोत है।

स्वामी विवेकानन्द को भरतीय राष्ट्रवाद का प्रवक्ता माना जाता है। उनका मानना था कि हांलाकि भारत में अनेक जातियॉ, धर्म, भाषा व संस्कृति के लोग रहते है लेकिन फिर भी इनमें समान आधार मौजूद हैं जिसके आधार पर राष्ट्रीय भावना तैयार की जा सकती है। वह आधार धर्म है।

विवेकानन्द का स्वतन्त्रता सम्बन्धित सिद्धान्त अत्यन्त व्यापक था। उन्होने लन्दन में अपने एक व्याख्यान में कहा था 'यह विश्व क्या है ?' स्वतन्त्रता में इसका उदय होता है और स्वतन्त्रता पर ही अविलम्बित हैं। उनके शब्दो में शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की और अग्रसर होना तथा दूसरो को भी प्रेरित करना ही सबसे बडा पुरस्कार है। इसमे बाधा डालने वाले को शीघ्र नष्ट कर देना चाहिए। वे मिल की तरह ही प्राकृतिक स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। लेकिन इसका तात्पर्य किसी को नुकसान पॅहुचाना नहीं हैं। उन्हाने कहा जीवन सुख और समृद्धि की एक मात्र शर्त चिन्तन और कार्य में स्वतन्त्रता है,जिस क्षेत्र में यह नहीं है उस क्षेत्र में मनुष्य जाति का पतन होगा। जिस समय राष्ट्र उदासीनता,निष्क्रियता और निराशा में डूबा हुआ था,उस समय विवेकानन्द ने शक्ति और निर्भयता की घोषणा की। उन्होने भारतीयो के अवचेतन मन मे यी भाव भरने की कोशिश की कि बिना शक्ति के हम अपने अस्तित्व को कायम नही रख सकते हैं। और न ही अपने अधिकारो की रक्षा करने में समर्थ हो सकते है। उनके अनुसार दुनिया में अगर कोई पाप है तो वह है दुर्बलता–'दुर्बलता पाप है मृत्यृ है।'

इस प्रकार एक राष्ट्र जो पराधीन और कमजोर हो उसमे निर्भयता का सन्देश देना 'मानव निर्माण करना' है। निर्भयता` शिक्षा से मिलती है। राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक है पुरुषत्व,मानव गरिमा तथा सम्मान व सौह्रार्द की भावना। स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्रवाद संर्कीण नहीं था बल्कि रविन्द्रनाथ टैगोर की तरह सावभौमिक है। जिस समय पूरा विश्व संशयवादी भौतिकतावाद से पीड़ित था उस समय विवेकानन्द जी ने अद्वैतवेदान्ती धर्म के माध्यम से सावभौमिक भावना को जीवित रखने का प्रयास किया।

विवेकानन्द जी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त जाति व्यवस्था तथा वर्ग व्यवस्था तथा उसमे व्याप्त अत्याचार तथा शोषण का उन्नमूलन करना चाहते थे जिसने हिन्दू समाज को शिथिल स्तरबद्व तथा विघटित दिया हैं। उन्होनें उच्च जातियो द्वारा किये गये उत्पीड़न और दमन के विरुद्व विद्रोह किया।

स्वामी विवेकानन्द सामाजिक यर्थाथवादी थे।उनके अनुसार'भूख से पीड़ित जनता को धर्म का उपदेश देना कोरा उपहास है। 'भारत की एक हजार वर्ष पुरानी दासता की जड़ जनता का दमन है। अभीजातीय निरकुंश वर्ग ने जनता का इतना शोषण किया कि वह अपनी मनुष्यता ही खो बैठी हैं। उनकी समाजशास्त्रीय व्याख्या अशंत मार्क्स और अशंत पेरौटो से मिलती है।उनके अनूसार बाह्म्ण व क्षत्रियों के बीच निरन्तर संर्घष की प्रवृति रही है। उनके अनुसार भारतीय इतिहास में दसे वर्गो बाह्म्ण और क्षत्रिय का आधिपत्य रहा। जिनमें संर्घष की निरन्तर प्रवृति बनी हुई थी। बौर इसी वर्ग ने जनता का निरन्तर शोषण किया। जिसे वे समाज सुधार के द्वारा समाप्त करना चाहते थे। तिलक का मानना था सामाजिक सुधार ब्रिटिश सरकार से स्वतन्त्रता के पश्चात भी किया जा सकता हैं। लेकिन विवेकानन्द गोखले के निकट थे। विवेकानन्द वैदान्त समाजवाद,समान अवसर व समाज सुधारक रहे है। वे मार्क्स की तरह हिंसात्मक क्रान्ति के समर्थक नही थे।वे सबलों की अपेक्षा दुर्बलो को अधिक अवसर देना चाहते थे।

निष्कर्षत स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रवाद के समर्थक थे और इसके लिए उन्होंनं नववेदान्त का आधार प्रस्तुत किया। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द जी अपने ओजस्वी विचारो से युगों युगों तक विश्व के लिए प्रेरणा बने रहेंगे।

सन्दर्भ सूची–

1 वर्मा वी पी,आधुनिक भारतीय राजननीतिक चिन्तन ,लक्ष्मी नारायन अग्रवाल पब्लिकेशन पृ0 128

2. मेरा जीवन तथा ध्येय स्वामी विवेकानन्द पेज संख्या 4–6 (द्वितीय संस्करण)
3. द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द वोल्यूम 2 प0ृ 698
4. वर्मा विश्वनाथ प्रसाद, द रिलेशन ऑफ तिलक और विवेकानन्द,द वेदान्ता केशरी,नवम्बर 1958 प0ृ 290–92
5. द लाइफ आफ विवेकानन्द 2 पृ0 753
6. द लाइफ आफ स्वामी विवेकानन्द पृ0 699
7. स्वामी विवेकानन्द 'मार्डन इंडिया 'कम्पलीट वर्क वाल्यूम 4 पृ0 409
8. द कम्पलीट वर्क वोल्यूम 5 पृ0 45

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

Bhabani Bhattacharya's Novel 'So Many Hungers' based on contemporary inspection of socio-political contemplations hungers and Freedom

Dr. Radhey Shyam Suman
Patna University, Patna

Bhabani Bhattacharya is a conscious writer with sensitive, understanding of the contemporary problems of Indian society. Bhattacharya is a novelist who is interested in portraying the problems of social change. Bhabani Bhattacharya, the time with his own style of objective treatment, the first Novel by Bhabani Bhattacharya is "So many Hungers" the great famine in Bengal inspired the writer to write this novel. The Quit India movement, The Bengal Famine the Second World War, the Japanese conquest of Burma all of them are presented by the writer in this Novel.

So many Hungers related of socio-political and economic situations of Bengal's society. His Novel shows a passionate awareness of life in India, the social awakening and protest. He holds up the mirror to society by highlighting social evils like injustice, exploitation, cruelty and oppression.

Bhattacharya has a thorough grasp of his basic theme of Hungers and has deal with most of its significant aspects and varieties. His Fiction is based upon Man's Hungers for food and political freedom. But it also gives adequate consideration to other forms of human hungers.

Bhattacharya's career apparently began under the influence of Mulk Raj Anand, in almost all his works. He deals with various aspects of Indian life. He deals with the social, religious, economic, political and even psychologically aspects of Indian life. Like other great Indian Novelists, his works present him as a revolutionary social writer as a Socialist, Bhabani Bhattacharya identifies and analysis the issues and problems of the society.

The story centres round the Basu's peasant family, Bhattacharya sketches the characters of the girl Kajoli, her mother and her brother. Another Urban family of Sarmendra Basu in Culcutta, consists of his wife, two sons Rahoul and Kunal and Rahoul's wife

Manju. The stories of these two families run parallel till the end of the Novel. The two families were linked by their contact with the saintly figure of an aged nationalist leader Devesh Babu, who is worshipped by the villagers of Baruni as a God. Devesh Babu's son Samendra Bose is quite opposite in nature and away of life to his Saintly Father, As war progresses he collects rice and hoards it and later on sell it at very high price. It is one level the story of Kajoli. She is the peasant girl from Baruni. She lives with her brother Anu and her mother. Her father and brother Kannu are arrested during the Quit movement, Kajoli married young boy Kishore. She enjoys a short period of her married life, the dream of her married life shatters. She loses her husband who moved to Calcutta in search of food, job and is shot dead by railway guard. Onslaught of war and man-made scarcity of food makes her homeless and turns in a miserable destitute, her pregnancy makes her life even more gruesome. She becomes a victim of poverty, hunger and exploitation.

As the Famine hit the land, villagers began to die of hungers, consequently left their villages and started moving towards the big cities in hope of getting food. The peasant's daughter Kajoli, her mother and her little brother Anu also suffered, joining this endless crowd of starving masses. On their way they came across partially alive famished skeletal whining in agony while Jackals crouch and eat their bodies, Vultures circling over human corpses and making a prey of human flesh. On the way Kajoli is sexually raped by a Soldier leaving her to bleed helplessly. In this condition, a Jackal attempts to eat up Kajoli, her brother Anu somehow drives it away, the same Soldier who raped her feels guilty and thus takes Kajoli and her family to Calcutta in Ambulance and admits her in a Hospital somehow her life is saved. After various sufferings and hardships, they finally reach Calcutta. Kajoli's mother and brother were fed by relief centres run by Rahoul but after he was arrested by Britishers, they begged for food but couldn't satisfy their hungers. Kajoli thinks of selling her shame for money when she sees her mother and brother falling ill but as she reaches the betel, women who runs a brothel, she hears the newspaper vendors shouting about Devata's fast into death in the Prison and that got Kajoli reminding Devata's messages to his people "Friends and Comrades, do not betray flag.

Be true be deathless, Vande Mataram". How could she, Dadu's granddaughter demean herself, her grandfather and her flag stricken by deep remorse, Kajoli decides of earning an honest living by turning into a Newspaper Vendor.

It was one level, the story of Kajoli, a village girl who righteously rejects the prostitution forced on her by the destitution of her family, to sell newspaper and so also to assume the persona of the Gandhian 'New Woman', at another level it deals with the spiritual and political growing up of Rahoul, a Cambridge educated astrophysicist who simultaneously discovers the limits of intellectual and western civilization and renounces both in favor of nationalism and village based economy. Much of his instruction comes by way of his grandfather Devata, a Saintly Gandhian figure with a penchant for the hungers strike, who is responsible for bringing 'Satyagraha' to the village Baruni, the focus is neither Rahoul nor Kajoli but the concrete individual on one hand and Vast historical forces on the other. 'So many Hungers' is no doubt an impeachment of man's inhumanity to man, but it is also a dramatic study of a set of human beings trapped in a unique tragic predicament." Characters have faith in Social pursuits and values. The characters are also individuals because they have their own style of behavior in different situations Bhattacharya mostly focuses on current problems that are conceived with political, social and economic oppression of our nationals. This novel has a vision of India, a vision of struggle for freedom, suffering and agony all round the world.

References:

1. Bhattacharya, Bhabani, so many Hungers Bombay; Hind Kitabs, 1947 DELHI, orient pap backs 160; LUCAS publications. (India Reprint)
2. Http//www. Jrank. Org/literature/pages/33350/ Bhabani-Bhattacharya, html, 20th 2015.
3. Sorot's, Balaram, The Novels of Bhabani Bhattacharya, prestige books, New Delhi 1984.
4. Mukherjee, Meenakshi, The perishable, Empire; Essays on Indian writing in English, Oxford University Press, New Delhi, 2000.
5. KRS Iyengar, Indian writing in English, 1984 p.414.

उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययनः सिल्ली प्रखंड के हिण्डाल्को कारखाने के विशेष संदर्भ में

अमित कुमार
शोध छात्र
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग
रांची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश

भारत की जनसंख्या में श्रमिक शक्ति का योगदान लगभग 37 प्रतिशत है। इसके अंतर्गत सभी प्रकार के श्रमिक सम्मिलित है। इन श्रमिकों में से लगभग 60 प्रतिशत से 70 प्रतिशत श्रमिक ग्रामीण इलाकों से आते हैं। ऐसे श्रमिकों को अपनी आजीविका चलाने के लिए नजदीकी शहरों की ओर रोजगार की तलाश में जाना पड़ता है, जबकी उनके पास किसी प्रकार की खास योग्यता भी नही होती है और न ही उनके कार्य के संन्दर्भ में कहीं पंजीयन किया जाता है, ऐसे श्रमिक असंगठित श्रमिकों की श्रेणी में आते है। देश के लघु व कुटीर उद्योगों में भी लाखों श्रमिक कार्यरत हैं। अकेले हस्तकरघा उद्योग का उदाहरण लिया जाता तो इसमें करीब 1 करोड़ से अधिक श्रमिक श्रम साधना कर रहे है। इसके अतिरिक्त अन्य श्रेणी में जिसमें एक श्रेणी कारखाने में कार्य करने वालों का है जिसमें अपनी जीविका चलाने के लिए लाखों की तादाद में श्रमिक कार्यरत है। वहीं उद्योगों में कार्य करने वाले मजदूरों की अवस्था भी कुछ खास परिवर्तित नहीं हो पायी है। श्रम शक्ति औद्योगीकरण की आधारशिला है, किसी देश की आर्थिक समृद्धि वहां के निवासियों के अथक श्रम में ही निहित है। अतः किसी भी देश का अर्थिक विकास मुख्यतया प्राकृतिक संसाधनों एवं मानवीय संसाधनों पर निर्भर करता है। इन दोनों साधनों के समृद्धि के आधार श्रम है। श्रम उत्पत्ति का अत्याज्य साधन है। विश्व के प्रत्येक भाग में मनुष्य अपने श्रम से ही जीविकोपार्जन करते हैं। भारत की जनसंख्या का लगभग एक तिहाई जनसंख्या श्रमिकों की है, भारतीय श्रमिक रोजगार के लिए बड़ी संख्या में गांव से शहर की ओर आते है। साधारणतया उनके परिवार के अधिकांश सदस्य गांव में रहते हैं। भारतीय श्रमिकों को मजदूरी भी कम मिलती है जिससे जीवन प्रयत्न दरिद्रता व ऋणग्रस्तता बनी रहती है। वर्तमान समय में भारत में बडी संख्या में औद्योगिक प्रतिष्ठान विकसित हो रहे हैं तथा उन प्रतिष्ठानों में बहुत भारी संख्या में मजदूर लगे है। औद्योगिक प्रतिष्ठान के संगठित एवं असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों पर अनेकों बार जानने का प्रयास किया गया है। श्रमिकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अनेकानेक प्रयास किये गये हैं, फिर भी अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हुई है। उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक है कि समय–समय पर उनकी स्थिति का मूल्यांकन किया जाये। इस शोध पत्र के माध्यम से हिण्डाल्को कारखाने में काम करने वाले मजदूरों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

महत्वपूर्ण बिंदु–श्रमिक हिण्डाल्को, मुरी, मजदूरी, ऋणग्रस्तता, मादक व्यसन

कारखाने में कार्य करने वालों श्रमिकों में जहाँ दैनिक मजदूरी भोगी श्रमिक कार्यरत है वही कुछ श्रमिक ऐसे भी है जो ठेकेदारी प्रथा के अंतर्गत अपना श्रम प्रदान कर रहे है। कारखाने में कार्य में संलग्न श्रमिकों की अधिकांश संख्या ऐसी है जो राज्य शासन के नियमित जीविकोपार्जन श्रमिक

है। सामान्यतः कारखाने में कार्य में लगे हुए श्रमिक ठेकेदारी प्रथा के अधीन अपना श्रम प्रदान कर रहे है। ठेकेदारी प्रथा के अंर्तगत आने वाले श्रमिकों की मजदूरी की दरें नीची होने के साथ उन्हें अन्य सुविधायें जो सामान्यतः संगठित उद्योगों के श्रमिकों को प्राप्त होती है, नही प्राप्त हो रही है। असंगठित श्रमिकों को प्रतिकुल परिस्थितियो में श्रमदान करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता है।

कारखाने में कार्य में षामिल असंगठित श्रमिकों को संगठित उद्योगों में लगे श्रमिकों की तुलना में नीचा जीवन स्तर जीते हुए अपनी जीविका का उपार्जन करना पड़ता है। संगठित श्रमिक उन मौद्रिक लाभ, वस्तुगत लाभ एंव सामाजिक कल्याण विषयक सुविधाओं के जो संगठित क्षेत्रो के मजदूरों को वैधानिक नियमानुसार उपलब्ध है, हकदार है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में मानवीय शक्ति का बहुत महत्व है क्योंकि निर्माणी उद्योंगों अथवा उत्पादन प्रकिया में क्षेत्र के लिए लगने वाली श्रम शक्ति की पूर्ति यह मानवीय शक्ति में से ही की जाती है। किसी भी प्रकार के निर्माणी एंव उत्पादन के क्षेत्र में भूमि, श्रम, पूंजी, एवं संगठन इन चार प्रमुख घटकों का अत्यंत महत्व है। श्री सेमिग्नन के अनुसार मनुष्य ने किसी भी प्रक्रिया को करने के पूर्व प्रकृति ने मुफ्त में किया गया दान यानि भूमि है। किसी भी देश का विकास यह उस देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन और उस देश की मानवीय श्रम षक्ति यह दों घटकों पर आधारित रहती है। मानवीय श्रम शक्ति का प्राकृतिक संसाधन के अनुपात में जितना ज्यादा उपयोग किया जायेगा उतने अनुपात में उस देश का आर्थिक विकास होता है।[1] यदि कोई देश प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध हो परंतु उन संसाधनों का उपयोग करने के लिए पर्याप्त मात्रा में श्रम शक्ति उपलब्ध न हो तो वह प्राकृतिक संसाधन अनुभवहीन साधनों की तरह पड़े रह जायेंगें। इसलिए किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए नैसर्गिक साधन के साथ–साथ पर्याप्त मात्रा में श्रम षक्ति का उपलब्ध होना भी आवश्यक है।

कारखाने में कार्य में श्रम की जितनी आवश्यकता होगी उतनी श्रम शक्ति का उपलब्ध होना जरूरी है क्योंकि श्रम के बिना किसी भी वस्तु का उत्पादन संभव नही है। जिस प्रकार से देश के आर्थिक व्यवस्था में श्रम को जितना स्थान प्राप्त हुआ है उतना स्थान उत्पादन प्रकिया के अन्य घटकों को प्राप्त नही हुआ है। उत्पादन के अन्य घटको को द्वितीय स्थान देकर श्रम को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। जिससे भारत देश में कारखाने में श्रम को ही प्रधान माना गया ऐसा दिखाई देता है। श्रम का प्रत्यक्ष संबंध श्रमिकों से आते है कि किसे श्रमिक कहां जाएं क्योंकि सभी व्यक्तियो को श्रमिक या कार्मिक व्यक्ति नहीं कहा जा सकता है। कर्मचारी इस शब्द का अर्थ जो व्यक्ति धन कमाने के उद्देष्य से मानसिक और शारीरिक श्रम करते है उस व्यक्ति को श्रमिक कहा जा सकता है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री एम.जी. रेनॉल्डस के मतानुसार जिस व्यक्ति का जीवनयापन का साधन केवल श्रम विक्रय है ऐसे लोगों का समावेश श्रमिक इस श्रेणी में आता है। श्रम यह श्रमिकों की काम करने की आंतरिक शक्ति है जो उन से अलग नही की जा सकती है। जहाँ श्रमिक है वहीं श्रम अस्तित्व में रहता है।[2]

कारखाने में श्रम के लक्षण

सैद्धान्तिक दृष्टि से तो औद्योगिक श्रम से हमारा आषय उन सभी श्रमिकों से होना चाहिए जो बड़े तथा छोटे पैमाने के उद्योगों जिन में कुटीर उद्योग भी है, में कार्य करते है। किन्तु भारत में इस पद का प्रयोग सीमित रूप से किया जाता है और उन सभी श्रमिकों को, जिन पर व्यवस्थित

कारखानों में फैक्ट्री अधिनियम लागू होता है, औद्योगिक श्रम का अंग मान लिया जाता है। वे श्रमिक जो कुटीर उद्योगों में काम करते है, इन में शामिल नहीं किए जाते। चूँकि हमारे देश में कारखाना उद्योगों की प्रगति बहुत धीरे–धीरे हुई, इसलिए औद्योगिक श्रम का विकास भी धीरे–धीरे हुआ है।

उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण के अनुसार, 1997 – 98 में कारखानों की कुल संख्या 13.6 लाख थी परंन्तु 2003 – 04 में कारखानों की संख्या कम होकर 12.9 लाख हो गयी। इसी प्रकार, कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या भी जो 1997–98 में 76.5 लाख थी, गिरकर 2003 –04 में 60.9 लाख हो गयी। चूँकि अर्थव्यवस्था में संगठित क्षेत्र मिलाकर श्रमिकों की कुल संख्या 2004–05 में 42.30 लाख का अनुमान, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 61 वें रौंद ने लगाया। इसका यह अभिप्राय है कि औद्योगिक श्रमिकों का कुल कारखाना रोजगार देने में 2003 – 04 में अनुमानित कुल श्रमिकों की संख्या का केवल 1.43 प्रतिशत था वस्तुतः यह बहुत छोटा है और भारत में औद्योगिक श्रम के छोटे आकार की ओर संकेत करता है।[3] परन्तु अपने संगठन और राष्ट्रीय आय में योगदान के कारण औद्योगिक श्रम देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जहाँ पर सन्तुष्ट औद्योंगिक श्रम देश का गौरव है, वहाँ असंतुष्ट औद्योगिक श्रम से तो राष्ट्रीय आय में कमी ही होगी।

भारत के औंद्योगिक श्रम के कुछ विशिष्ट लक्षणों के कारण मजदूर संघ व्यवस्था पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। प्रथम, बहुत से औद्योगिक श्रमिक, मूलतः ग्रामवासी है। इनमें से बहुत से लोग नौकरी की तलाश में स्थायी या अस्थायी रूप में शहरो में आकर बस जाते हैं। इनमें से बहुत से भूमि के साथ अपना सम्बन्ध कायम रखते है और इस कारण वे कभी शहरो में चले जाते हैं और कभी गांव में लौट आते हैं। श्रम का प्रवासीपन हमारे औंद्योगिक श्रम की विशेषता है। पिछले कुछ वर्षो में ही औद्योगिक श्रम के एक नए वर्ग का विकास हुआ है, जिसकी जड़े कृषि में नही बल्कि जो स्थायी रूप में नगरों और कस्बों में ही रहता है।

दुसरे औद्योगिक श्रमिक अधिकतर अशिक्षित है और परिणामतः वह उद्योगों की समस्याओं से परिचित नही होता। इस श्रमिक को अपनी समस्याओं का भी पूर्ण आभास नहीं होता भारत मे मजदूर संघ आन्दोलन के कमजोरी रहने का यह मुख्य कारण है।

तीसरे भारत में औद्योगिक श्रम प्रदेश, धर्म, जाति, भाषा, आदि के आधार पर बंटा हुआ है। पिछले वर्षो से ये भेदभाव बलहीन होते जा रहे हैं और आर्थिक आधार पर औद्योगिक श्रम संगठित होता जा रहा है।

चौथे भारतीय श्रमिक काफी समय तक एक ही नौकरी पर नहीं रहते। श्रम का आधिक्य अनुपस्थितिता, अनुशासनहीनता आदि मुख्य समस्याएँ है। इनका एक कारण तो यह है कि श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं जहाँ वे अपेक्षतः स्वतन्त्र परिस्थितियों में पलते हैं या कुछ हद तक उनमें षिक्षा का अभाव और अवकाष की चाह इसके लिए उत्तरदायी है।

<u>श्रमिकों का अभाव</u>

ऐसे श्रमिक संगठित नही रहते हैं इसलिए उन्हें असंगठित श्रमिक ही कहना होगा। असंगठित श्रमिकों से आषय ऐसे श्रमिकों से है जिनका उनके हितों की रक्षा हेतु कोई औपचारिक तालमेल या संगठन नही है। ऐसे असंगठित श्रमिक अपनी मजदूरी व सेवा संबंधी शर्तो का निर्धारण प्रमुखता से व्यक्तिगत करार या समझौते के आधार पर करते है। इसका प्रमुख कारण यह है कि असंगठित श्रमिकों की मजदूरियों की दरों एवं सेवा शर्तो के लिए सरकार की ओर से कोई ऐसे ठोस कानून नही बनाये गये हैं।

वे इन श्रमिकों पर लागू नही हो रहे है। इस वर्ग के श्रमिक दिन–हीन अवस्था निम्न जीवन जीने के लिए बाध्य हो रहे है इन श्रमिकों का योजनाबद्ध तरीकों से शोषण होता है यदि शासन ने प्रभावी नियंत्रण नही लगाये तो यह शोषण भविष्य में भी जारी रहेगा और प्रजातांत्रिक समाजवादी समाज की संरचना में यह बाधक सिद्ध होगा।

लीडर डीरोबर्ट : "श्रम अर्थशास्त्र में श्रम समस्याओं के वर्गीकरण एंव विषलेषण तथा श्रम संघो के विकास एंव भूमिका के साथ श्रम–बाजार की विषेषताओं का विवेचन किया जाता है।"[4]

डेल योडर ने इसे "मानव शक्ति अर्थशास्त्र की संज्ञा दी है। उनके अनुसार श्रम अर्थशास्त्र मुख्यतः जनशक्ति एंव साधनों के अनुकूलतम उपयोग एंव सुरक्षा से सम्बन्धित है।"[5]

रांची जिला सिल्ली प्रखंड की स्थिति

सिल्ली भारत देश के झारखंड राज्य के रांची जिले में एक प्रखण्ड है। सिल्ली प्रखण्ड प्रमुख मुख्यालय सिल्ली शहर है। यह जिला मुख्यालय रांची से पूर्व की ओर 57 किमी की दूरी पर स्थित है। सिल्ली प्रखण्ड झालदा– प्रखण्ड से पष्चिम की ओर, दक्षिण की ओर सोनाहातु प्रखण्ड, उत्तर की ओर गोला प्रखण्ड, पूर्व की ओर झालदा प्रखण्ड से घिरा हुआ है। रामगढ़ सिटी, तेनु डैम–कम–कथारा सिटी, पुरुलिया सिटी, गोमिया सिटी, सिल्ली के नजदीकी शहर हैं। सिल्ली में 163 गाँव और 22 पंचायत शामिल हैं। यह 269 मीटर ऊंचाई पर है। यह स्थान राँची जिला और पुरुलिया जिले की सीमा में है। पुरुलिया जिला झालदा– इस स्थान की ओर पूर्व की ओर है। यह पश्चिम बंगाल राज्य सीमा के पास है। दशम जल प्रपात, बोकारो स्टील सिटी, पुरुलिया (मानभूम शहर), राँची, सराइकेला महत्वपूर्ण पर्यटन स्थलों के पास हैं। हिंदी यहां की स्थानीय भाषा है। साथ ही लोग उर्दू, बंगाली, असुरी, मुंडा बोलते हैं।[6] सिल्ली प्रखण्ड की कुल आबादी 109,402 है जो 22,402 घरों में रह रही है, जो कुल 163 गांवों और 22 पंचायतों में फैली हुई है। पुरूष 55,990 और महिलायें 53,412 हैं। कुल 12,009 व्यक्ति शहर में और 97,393 ग्रामीण रहते हैं।[7]

मुरी पंचायत–

2011 की भारत की जनगणना के अनुसार, मुरी की जनसंख्या 11,999 थी। पुरुषों की आबादी 53 प्रतिशत और महिलाओं की 47 प्रतिषत है। मुरी की औसत साक्षरता दर 73 प्रतिषत है, जो राष्ट्रीय औसत 59.5 प्रतिशत से अधिक हैः पुरुष साक्षरता 82 प्रतिशत है, और महिला साक्षरता 62 प्रतिषत है। मुरी में, 12 प्रतिशत आबादी 6 साल से कम उम्र की है।

हिंडाल्को कारखाने की स्थिति

आदित्य बिड़ला समूह भारत के साथ थाईलैंड, दुबई, सिंगापुर, म्यांमार, लाओस, इंडोनेशिया, फिलीपींस, मिस्र, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, चीन, अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, हंगरी, ब्राजील, इटली, फ्रांस, लक्समबर्ग, स्विट्जरलैंड, बांग्लादेश, मलेशिया, वियतनाम और कोरिया समेत 25 देशों में कार्यरत मुंबई में स्थित मुख्यालय वाला एक बहुराष्ट्रीय सांगठनिक निगम है।

आदित्य बिड़ला समूह यूएस 30 बिलियन यूएस का संगठन है जो अपने राजस्व का 60% भारत के बाहर से प्राप्त करता है। समूह स्वयं द्वारा संचालित सभी औधोगिक क्षेत्रों में प्रमुख खिलाड़ी है। बिरला समूह हेवेट–इकॉनामिक टाइम्स और वॉलस्ट्रीट जर्नल स्टडी 2007 के द्वारा एशिया में शीर्ष 20 के बीच भारत के श्रेष्ठ नियोक्ता के रूप में घोषित किया गया है। समूह की उत्पत्ति भारत के अग्रणी उद्योगपति घनश्याम दास बिरला के द्वारा पहली बार स्थापित संगठन में निहित है।[8]

हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड की मुरी वर्क्स भारत की पहली एल्यूमिना रिफाइनरी है जिसे 1948 में तत्कालीन भारतीय एल्युमीनियम कंपनी ने शुरू किया था। 2005 में, का अधिग्रहण करने के

बाद संयंत्र को अपने साथ मिला लिया। यह संयंत्र झारखंड राज्य की राजधानी रांची से 65 कि.मी. दूर छोटा मुरी में स्वर्णरेखा नदी के तट पर स्थित है। मुरी संयंत्र की प्रारंभिक स्थापित क्षमता 4 के. टी.पी.ए थी। इन वर्षों में, यह 450 की अपनी वर्तमान क्षमता के विस्तार और डिबेटलेनिंग के विभिन्न चरणों से गुजरा है। रिफाइनरी एल्यूमीनियम, धातु, अबरख, कांच और फिटकिरी विनिर्माण उद्योगों में ग्राहकों की सेवा के लिए एल्यूमिना और एल्यूमिना हाइड्रेट के मानक और विशेष ग्रेड का उत्पादन करती है। प्लांट और कॉलोनी का कुल क्षेत्रफल एक साथ 334.2 एकड़ है। यहां पर काम करने वाले कर्मकारों की संख्या 5427 है जिसमें सभी नियमित एवं संविदा पर अर्थात स्थायी एवं अस्थायी कर्मकार शामिल हैं।[9]

सामाजिक आर्थिक स्थिति का विष्लेषण

औद्योगिक केन्द्रों में कम से कम एक चौथाई श्रमिक ऋणग्रस्त है। हिण्डालको इण्डस्ट्रीज लिमिटेड के पार्ट रूम में कार्यरत श्रमिक भी ऋणग्रस्त है और ऋण की राशि 3 माह के वेतन से भी अधिक है। प्रातः औद्योगिक केन्द्रों द्वारा समय–समय पर श्रमिक वर्ग की ऋणग्रस्तता की व्यापकता की जॉच की जाती है, यद्यपि इस जॉच को अधिक विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि जॉच अधिकारियों को श्रमिक अपनी सामाजिक आर्थिक स्थिति बताने में संकोच करता है। श्रमिकों को भी कई बार अपनी ऋण की सम्पूर्ण जानकारी का ज्ञान नहीं होता। यह भी आश्चर्य की बात है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता की समस्या पर कोई विचार नही किया कि श्रमिक जितना ऋण लेता है, उसे लिए हुए ऋण का कई गुना ब्याज के रूप में चुकता कर देने के बाद भी वह ऋणी ही रहता है। इस सन्दर्भ में 1970 तक के दशकों के अध्ययनों के निष्कर्ष इस तथ्य की ओर इंगित करते है कि औद्योगिक केन्द्रों पर कार्यरत सम्पूर्ण श्रमिकों में से 25 प्रतिशत श्रमिक ऋणग्रस्त है। यही हाल अध्ययन में सम्मिलित पार्ट रूम में कार्यरत श्रमिकों का भी है। यही कारण है कि प्रारम्भिक अध्ययनों में भारतीय श्रमिकों को कार्य के प्रति अप्रतिबद्ध श्रमिक कहा गया है।[10] किन्तु बाद के अध्ययनों में रोजगार की सुरक्षा तथा उद्योगों में मुहैया होने वाली श्रम–कल्याण की सुविधाओं के फलस्वरूप औद्योगिक केन्द्रों पर ऋण ग्रस्त औद्योगिक दुर्घटना भी ऋणग्रस्तता का महत्वपूर्ण कारण है, लेकिन औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा श्रम कल्याण की अत्यधिक सुविधा के कारण अब इसमें कमी आयी है। सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों में भाग लेने के लिए भी प्रायः श्रमिक ऋण लेते रहते है। युवा श्रमिकों में मध्यम आयु के श्रमिकों की अपेक्षा अधिक ऋणग्रस्तता पायी जाती है क्योंकि युवा श्रमिक कार्य के प्रति अप्रतिबद्ध रहता और जब वह औद्योगिक प्रतिष्ठान से अनुपस्थित हो जाता है। तो श्रमिक जितने दिन अनुपस्थित रहता है, उतने दिनों का वेतन प्रतिष्ठान द्वारा काट लिए जाते है जिससे युवा श्रमिकों को महीने के अन्त में कम मजदूरी मिलने के कारण ऋण ग्रस्तता अधिक पायी जाती है।

औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता का विश्लेषण उनकी गिरी हुई आर्थिक अवस्था बहुत ही दुःख पूर्ण है। इस अत्यधिक ऋणग्रस्तता के अनेक कारण है। अधिकतर गरीब श्रमिक अपने पिता के ऋण को पैतृक सम्पत्ति के रूप में ग्रहण करते है। परन्तु ऋणग्रस्तता का सबसे प्रमुख कारण समय–समय पर विवाहोत्सव मृत्यु संस्कार, पर्व तथा वार्षिक उत्सव आदि है। श्रमिकों की प्रवासिता भी उनकी ऋणग्रस्तता का एक महत्वपूर्ण कारण है। जब कोई ग्रामीण प्रथम बार शहर में पहुँचता है तो उसके साधन एक ग्रामीण किसान अथवा मजदूर की अपेक्षा अधिक सीमित होते है। पहले कुछ सप्ताह तक (जिसमें औद्योगिक प्रतिष्ठान उसे कोई वेतन नही देता) खर्च हेतु श्रमिक को किसी भी शर्त पर ऋण लेने में संकोच नहीं होता। बहुधा बन्धक रखी जाने लायक कोई वस्तु न होने के

कारण श्रमिक एक ऐसे प्रलेख पर धन के लिए हस्ताक्षर कर देता है, जो धन सम्भवतः गाँव में उसे कभी न मिलता जिसमें लिखी बातों का अक्सर उसे ज्ञान भी नही होता। फिर इस बुराई का एक और कारण अज्ञात विपत्तियों का अचानक सामना करने के लिए किसी भी संचित राशि का न होना है। भारत में मजदूर का वेतन स्तर अत्यन्त कम होता है। और बचत भी कम होता है। अल्प वेतन ही ऋणग्रस्तता का एक मात्र कारण नहीं है, क्योंकि अधिक वेतन पाने वाले श्रमिक अल्पवेतन पाने वालों से अधिक ऋणग्रस्त है। फिर भी यह कह सकते है कि न्यून वेतन श्रमिकों की ऋणग्रस्तता का एक महत्वपूर्ण कारण है। निर्धनता कभी तो ऋणग्रस्तता का कारण बन जाती है, कभी उसका परिणाम होती है और कभी दोनों ही। यह सत्य है कि ऋण ग्रस्तता का मुख्य कारण सामाजिक रीतियों पर श्रमिकों द्वारा किया गया व्यय है। इस व्यय को साधारणतया अपव्यय समझा जाता है, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रमिक भी सामाजिक संगठन का एक अंग है। अतः उसको भी कुछ सामाजिक कार्य एक निश्चित स्तर परिपूर्ण करने होते है। चाहे वह इन पर होने वाले व्यय का वहन कर सकता हो। इन मामलों में श्रमिक प्रायः असहाय होता है, क्योंकि ''भारत जैसे देश में रीति रिवाज केवल शासक ही नहीं वरन अत्यन्त निर्दयी शासक है।'

औद्योगिक श्रमिकों की ऋ़णग्रस्तता का एक मुख्य कारण यह है कि उसका व्यय अधिक है और आय कम है। ऋणग्रस्तता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि श्रमिकों को ऋण सरलता से मिल जाता है बहुधा अध्ययन में यह भी पाया गया है कि ठेकेदार जो श्रमिकों को औद्यागिक प्रतिष्ठानों में सप्लाई करते है अथवा मध्यस्थ भी ऋण देने का धन्धा करता है, पर चुनिये भी ऋण देते है और ऋण सामग्री अथवा जिन्स के रूप में भी दिया जाता है। दुकानदार भोजन एवं मदिरा भी उधार देते हैं। वास्तव में अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि जिस व्यक्ति के पास तनिक भी देशी धन हो, वह ऊँची व्याज दर पर ऋण देने के विषय में सोचने लगता है क्योंकि श्रमिक के पास अपनी जमानत के अतिरिक्त कोई जमानत नहीं होती और श्रमिक की प्रवससिता के कारण उसको ऋण देने में बहुत जोखिम होता है। अधिकतर श्रमिक महाजनों के चंगुल में फस जाते हैं और कभी–कभी अपने खास मित्रों के बहकावे में आकर जो बहुधा महाजन का एजेण्ट होता है, उधार धन लेने के लिए तैयार हो जाता है। यदि लिखित प्रलेख न भी हो तब भी श्रमिक में महाजन की मॉग को ठुकराने का साहस नही होता। ये लोग बहुत ऊँचीं दरों पर ब्याज वसूल करते हैं और यदि श्रमिक ऋण चुकाने में कुछ आनाकानी करें तो शारीरिक शक्ति प्रयोग का भय दिखाकर प्रत्येक मास वेतन का अधिकांश भाग ब्याज के रूप में ही ले लेते है।

ऋण–ग्रस्तता के दुष्परिणाम

सरलता से मिला ऋण श्रमिक के लिए सबसे बड़ा अभिशाप साबित हुआ है और इस रीति का सबसे दुखदायी दोष यह है कि ऐसे छोटे व बड़े ऋण भी आसानी से मिल जाते है, जिनको अशिक्षितता, उनमें व्यावसायिक समझ और दूरदर्शिता पैदा करने में बाधक सिद्ध होती है और उनकी हिसाब लगाने की असमर्थता के कारण उन्हें इस बात के लिए विवश होना पड़ता है कि (महाजन को पूरा ब्याज) लगातार नही मिलता और इसलिए इस बकाया ब्याज को भी वह मूलधन में जोड़ देते है कुछ ही वर्षो में यह मूल ऋण बहुत बड़े व स्थायी ऋण में परिवर्तित हो जाता है। बहुत बार तो ऋण देने वाला व्यक्ति वेतन मिलने वाले दिन ही श्रमिक एवं उसके सम्पूर्ण परिवार का कुल वेतन ले लेते है और उनको केवल जीवन निर्वाह हेतु धन फिर ऋण के रूप में दे देते है। बहुत से परिश्रमी श्रमिक केवल ब्याज देने ही के लिए अपने जीवन की आवश्यकताओं को छोड़ने पर विवश हो जाते हैं और मूल ऋण चुकाने का तो उन्हें मौका ही नहीं मिल पाता । इसलिए ऋणग्रस्तता कार्य कुशलता की

वृद्धि में बाधक है। ऋणग्रस्त श्रमिक जो कुछ अतिरिक्त प्रयत्न करते है उनका लाभ केवल ऋण देने वाले साहूकार को ही होता है और ऋणग्रस्त श्रमिक सदा ही परेशान रहता है। '' इस प्रकार ऋण की विडम्बना श्रमिकों के आत्मसम्मान के लिए एक अभिशाप सिद्ध हुई है और उनकी कार्य कुशलता का ह्रास करती है।''[11]

ऋणग्रस्तता की समस्या को दूर करने के उपाय औद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रम कल्याण की इतनी अधिक सुविधा उपलब्ध हो जाने के बाद भी औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता कम होती दिखाई नही देती। यह तथ्य सत्य प्रतीत होता है क्योंकि साहूकारों/महाजनों को औद्योगिक क्षेत्रों में समाप्त कर देना कठिन है। कठोर कानून बन जाने से साहूकारों का मार्ग कठिन अवश्य हो जाता है परन्तु साहूकारों के लिए श्रमिकों से उनके घरो से अपना ऋण वसूल करना कठिन नही है। विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जबकि ऋणदाता औद्योगिक प्रतिष्ठान के अन्दर का ही मध्यस्थ होता है। ऐसे अवसर भी आते है जब श्रमिक को धन की अत्यधिक आवश्यकता होती है साहूकार संकटकालीन परिस्थिति में श्रमिकों को सहायता देकर एक बहुत उपयोगी कार्य करते है। इसमें सन्देह नहीं कि राज्य श्रम आयोग श्रमिकों द्वारा ऋण पाने की सुविधाओं को कम करने के पक्ष में था परन्तु श्रम से सम्बन्धित चाहे जो भी कानून बनाया जाये, जब तक अत्यन्त अल्प मजदूरी, भर्ती तथा पदोन्नति में चलने वाली सर्वव्यापी घूस और भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं किया जायेगा, श्रमिक साहूकार के बिना नहीं रह सकता और इस समस्या का कोई विशेष समाधान नहीं हो सकता। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि श्रमिक इतना धन अर्जित करने योग्य हो जाये कि वह न केवल अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताओ को पूर्ण कर सके, वरन कुछ बचत भी कर सके जो कि भविष्य में अचानक आने वाले संकटों के समय और कुछ विवाह जैसी रीति रिवाज की आवश्यकताओं के अवसरों पर व्यय की जा सके। सन् 1962 से श्रम व रोजगार मन्त्रालय ने सरकारी तथा गैरसरकारी क्षेत्र के ऐसे उद्योगो में उपभोक्ता सहकारी भण्डारों व उचित मूल्य की दुकानों के संगठन की एक ऐसी योजना लागू की है जिनमें 50 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते है ऐसे उद्योगों में सहकारी समितियां उचित मूल्य की दुकाने खोली गयी, और औद्योगिक प्रतिष्ठान के शत् प्रतिशत श्रमिक इन केन्द्रों से कम मूल्य पर आवश्यक आवश्यकता की वस्तुएं ले भी रहें है। हिण्डालको इण्डस्ट्रीज लिमिटेड भी अपने श्रमिकों को श्रम कल्याण की अत्यधिक सुविधा प्रदान कर रहा है ताकि श्रमिक औद्योगिक केन्द्र पार्ट रूम से कम अनुपस्थित रहे, जब श्रमिकों में अनुपस्थिति कम होगी तो वे ऋणग्रस्त भी कम रहेगें। इसके अतिरिक्त ऋण ग्रस्तता की समस्या को हल करने के लिए श्रमिकों में शिक्षा के विस्तार एवं प्रचार द्वारा अपव्यय को रोकना भी नितान्त आवश्यक है। चूँकि कारखाने का कार्य, शारीरिक श्रम तथा शक्ति पर आधारित है। ऐसी स्थिती में न तो नियोक्ता ही उन्हें काम पर लगाना उचित समझते है और न ही श्रमिक इस क्षेत्र में आना चाहते हैं वैसे भी हमारे देश में कुपोषण की समस्या के कारण 50 वर्ष की आयु के पश्चात व्यक्तियों की कार्य क्षमता इस योग्य नही रह जाती कि वे शारीरिक श्रम तथा शक्तिवाला कार्य कर सके। अधिकांश श्रमिक अपनी आय में से एक बड़ी राशि शराब, पान एवं तम्बाकू पर व्यय करते है जिसका विपरित परिणाम उनके परिवार की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। इन उद्योगों के श्रमिक परिवार में जो व्यवसाय पहले से ही किया जा रहा हो वे उसे ही अपनाते हैं एवं व्यवसाय बदलने में उन्हे ज्यादा रूचि नहीं है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है कि हिंडाल्को में कार्य में संलग्न श्रमिकों की मजदूरियों का स्तर नीचा ही नहीं है बल्कि उनके समक्ष

अनेकानेक समस्याएं विद्यमान है। वास्तव में जब हम विभिन्न समस्याओं की ओर दृष्टिपात करते है कि जब तक इन लोगों की आय का स्तर उँचा नहीं उठाया जाता तब तक देष में सामाजिक न्याय पर आधारित समाजवादी समाज की रचना एक अधूरे स्वप्न से अधिक नहीं होगा चूँकि कारखाने का कार्य, जनसंख्या वृद्धि के साथ निरन्तर बढता चला जा रहा है। अतः इस क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों की समस्याओं को शीघ्र ही हल करने के प्रयास करके इस उपेक्षित वर्ग को, राष्ट्रीय धारा के साथ जोड़ने का प्रयास किया जाय, ताकि हम शोषण मुक्त, गांधीवादी समाज की स्थापना करने में सफल हो सकेंगे। सरकार को इस दृष्टि से एक पृथक कानून का निर्माण करके, उसे कड़ाई के साथ पालन करने का प्रयास करना चाहिए। यदि इस दिषा में कोई कार्य नहीं किया गया तो इस वर्ग के श्रमिकों में एकता, असंतोष सारे विकास प्रयासों को गति देने वाले कार्यक्रमों में बाधक बन सकता है। नैतिकता और न्याय की भी यह मांग है कि इस वर्ग के श्रमिकों की समस्याओं को हल करने हेतु प्रभावषाली एवं ईमानदारी पूर्ण प्रयास किये जायें।

संदर्भ सूची

1. भगोलिवाल टी.एन. एंव प्रेमलता भगोलीवाल 1998 श्रम अर्थशास्त्र एंव औद्योगिक संबंध, साहित्य भवन, आगरा
2. पंत एस.पी. 1971ः इंडियन लेबर प्रॉब्लेम्स, चेतना पब्लिसिंग हाऊस इलाहाबाद
3. भारत सरकार : राष्ट्रीय श्रम आयोग प्रतिवेदन, श्रम मंत्रालय, दिल्ली 1969
4. रोबर्ट जी उद्धृत जैन के.सी.ः 1983 आर्थिक विश्लेषण, साहित्य भवन, आगरा
5. डेल योडर उद्धृत गोपाल आर.एम. 1983ः विकास का अर्थशास्त्र एंव नियोजन, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
6. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू. रांची डिस्ट्रीक्ट. एन आई सी. इन
7. भारत की जनगणना 2011
8. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू. हिंडाल्को.कॉम/अपलोड / पीडीएफ/ हिंडाल्को– एनुअल– रिपोर्ट– 2019 पीडीएफ
9. उपरोक्त
10. जैन के.सी 1983ः अर्थशास्त्र के सिद्धांत, साहित्य भवन, आगरा
11. वहारे एस.आर.ः 1983 शहरी क्षेत्र मे पारिवारिक बचत व्यवहार भोपाल शहर के सन्दर्भ में शोध प्रबन्ध सागर विश्वविद्यालय, सागर।

Trends of Poverty in India

Dr Shashi Bhushan
Assistant Professor: Economics
Sudhakar Mahila Post Graduate
College, Varanasi

Economic growth in itself, however, though necessary, is not sufficient to ensure poverty reduction. The distribution of growth is decisive, and it is well known that in India the distribution has been highly unequal. In the rural parts, where the vast majority live and where the bulk of poverty is found, growth has been slow. In terms of growth rates, agriculture has generally lagged behind manufacturing industry and services. The green revolution of the 1960s and 1970s did produce markedly higher yields and incomes in regions with access to irrigation. It also resulted in greater differences between rich and poor farmers and between regions with extensive irrigation (e.g. Punjab-Haryana) and regions dependent on rain fed agriculture. The high growth rates in the 1980s and 1990s have primarily been in the secondary and tertiary sectors and have first of all benefited people in the urban areas, not least the rapidly growing middle class. Again inequalities are on the increase.

Nelson Mandela came out of retirement in February 2003 to speak on behalf of the Make Poverty History campaign in London, an effort to renew the global commitment to eliminating poverty worldwide. "Like slavery and apartheid, poverty is not natural," Mandela intoned. "It is man-made, and it can be overcome and eradicated by the action of human beings." In imagining a world without poverty, Mandela echoed arguments first made by reformers like Paine and Condorcet in the wake of the French Revolution (Stedman Jones, 2004). Writing of an imminent effort to fight global inequality, Condorcet wrote in 1793 that "everything tells us that we are now close upon one of the great revolutions of the human race."2 Condorcet's great revolution remains unrealized two centuries later, and advocates hope that Mandela's strong voice will spur surer action to eliminate the deprivations suffered by the world's poor. In turning from a moral case to the practical task, the initial questions are:

► How do we go from advocacy to action?
► What are the most important constituents of poverty?
►How can elements of deprivation be addressed that go beyond a lack of private resources?

► How, as a practical matter, should poverty be officially defined and measured in a world where technical and administrative capacities are often limited, especially where national statistical offices are already stretched thin?"

This research paper will be to use a multidisciplinary team and a mix of quantitative and qualitative methods for researching chronic poverty in India. Both primary and secondary data and information sources will be used. At the macro level, the research will use data available at the national level from the National Sample Survey, panel data sets and data pertaining to a large range of multidimensional indicators.

Concept of Poverty

Poverty is regarded by economists as a serious malaise harmful to economic growth and development. Poor and poverty are historical in nature and their concern appears to be as old as human history. Generally, the terms are used as if their meanings are clear, but this is not so. Poverty exist in all countries and in all societies and has various aspects, lack of income, productive resources, hunger and malnutrition, illiteracy, homelessness and inadequate housing, unsafe environment, social discrimination and exclusion. The meaning of poverty has been changed over time and varies not only from society to society but it also varies within the same society at different points of time. Poverty is one of the most important and pressing problems facing Indian Economy today. It is a socio-economic problem that goes beyond the boundaries of economic arena and covers other aspects such as the inability to participate in social and political life. Poverty, however, is multidimensional in nature. Apart from the income approach to poverty, there are other ways to conceptualize poverty, i.e., deprivation in other areas such as literacy, schooling, life expectancy, child mortality, malnutrition, safe water and sanitation. The concept and content of poverty differs from country to country depending upon what a particular country accepts as a reasonably good standard of living for its people. The basic definition of poverty is that anyone poor. A poor person is one who does not have command over or access to the basic physical needs like adequate food, drinking water, clothing, shelter and social needs like education and health. Poverty can be defined in terms of absolute and relative poverty. Absolute poverty measures poverty in relation to the amount of money necessary to meet basic needs such as food, clothing, and shelter. The population whose level of income/expenditure is below this minimum necessary benchmark is considered to be below the poverty line. The concept of absolute poverty is not concerned with broader quality of life issues or with the overall level of inequality in society. The concept, therefore, fails to recognize that individuals have important social and cultural needs too. On the other hand, relative poverty is defined in relation to the economic status of other members of the society; people are poor if they fall below prevailing standards of living in a given societal context (income distribution in different groups is estimated and then compares top 5 to 10 percent with

bottom 5 to 10 percent). Though, both the concepts are largely concerned with income and consumption (Kozel and Parker, 1999)

Definition of Poverty Line in India

The basis for identifying the extent of poverty in India has been evolving over time. Attempts to define a poverty line which permit estimation of the extent of poverty have had a fairly long history. The earliest was Dadabhai Naoroji who estimated a subsistence-based poverty line at 1867-68 prices which includes rice or flour, dal, mutton, vegetables, ghee, and vegetable oil and salt. He pointed out that the poverty line varies from Rs 16 to Rs 35 per capita per year in various regions of India. Further, in June 1939, KT Shah (the Secretary of the National Planning Committee at that time) prepared a note and stating that the fundamental aim of planning is to ensure an adequate standard of living for the masses. Shah pioneered a poverty line which was based on the estimates of economists in different parts of India and varies from Rs 15 to Rs 20 per capita per month at the present value of the rupee at that time (IIAPR 1988). The third poverty line was proposed by the Bombay Plan of Thakurdas et al (1944) was Rs. 65 per capita per annum. In 1962, the Planning Commission appointed a Working Group of eminent economists and recommended a poverty line. This poverty line was set at a minimum level of expenditure of Rs 20 per day for rural 148 areas and Rs 25 per day for urban areas at 1960-61 prices below which households would not be able to meet basic requirements for living. Sukhatme (1965) provided an additional dimension to the discussion pointing to the inter-individual and intraindividual variations in calorie requirements. He suggested a retail level consumption - India demographic data from the 1971 Census, Sen provided estimates of poverty and said that poverty lines are not arbitrary figures, but have been derived from age-sexoccupation specific nutrition, explicitly bases on estimates of the normative nutritional requirement of the average person in the rural and urban areas of the country separately (Sen, 2005). In 1971, Dandekar and Rath, provided the first systematic assessment of the incidence of poverty based on the NSS data for 1960-61 using a cut-off level of expenditure that was adequate to provide 2250 kcals per capita per day both in rural and urban areas. Dandekar (1996) again pointed out four measures for the determination of poverty line, i.e., proportion of expenditure by a household on essential item such as food, the calorie value of food, the cost of a balanced diet and the cost of essentials of a tolerable human existence. In 1977, the Planning Commission constituted a Task Force (Alagh Committee), which submitted its report in 1979. Based on observed consumer behaviour in 1973-74, it was estimated that on an average, consumer expenditure of Rs. 49.63 per capita per month was associated with a calorie intake of 2400 per capita per day in rural areas and correspondingly Rs. 56.76 per capita per month with a calorie intake of 2100 per capita per day in urban areas. The poverty line for subsequent years was estimated by adjusting the poverty line for the base year 1973-74 for inflation (Planning Commission Report, 1993). 149 Subsequently, in 1989, Planning Commission constituted an Expert Group (Lakdawala

Committee) to review the methodology used for the assessment of poverty. The Expert Group recommended that the continuation of the calorie based consumption expenditure as a cut-off is used for the determination of the number of poor below poverty line. Experts consensus is based on the view that national level poverty lines should be disaggregated into state-specific poverty lines and then updating the poverty lines using the Consumer Price Index of Industrial Workers (CPI-IW) in urban areas and Consumer Price Index of Agricultural Labour (CPI-AL) in rural areas. They also recommended the dis-continuation of adjustment for the difference between NSS and NAS estimate of mean consumption expenditure because of increasing divergence between the two and the increased adjustment in the level of consumption expenditure for all the households and the estimated decreased rate of poverty as compared to the unadjusted data (Planning Commission 1993). Based on these criteria, Planning Commission estimated poverty lines separately for rural and urban areas which are presented in the Table (1).

Table 1: Poverty Lines at All India Level (In Rs.)

Year	Rural	Urban
1973-74	49.63	56.64
1983-84	89.50	115.65
1993-94	205.84	281.35
1999-2000	327.56	454.11
2004-05(URP)	356.30	538.60
2004-05(MRP)	356.30	538.60
2009-10	672.8	859.6
2011-12	816	1000

Source: Planning Commission

After viewing all of the above approaches of poverty estimation, Planning Commission set up an expert group headed by Prof S.D. Tendulkar to re-examine the issue and provided new poverty estimates based on a new poverty line. The Tendulkar Committee Report (Planning Commission, 2009) has recommended four major changes in the methodology for estimating incidence of poverty. The first one is a conscious move away from calorie anchor while testing for the adequacy of actual food expenditure near the poverty line to ensure certain aggregate nutritional outcomes. He also recommended that the same consumption basket should be used in both (rural and urban) areas but application of the prices prevailing in rural areas to estimate the poverty line for rural areas. This exercise has been done for each state and then the estimates of poor are to be prepared at the national level for rural and urban areas. Tendulkar also applies a price adjustment procedure that is predominantly based in the same data set that underlies the poverty estimation and hence, corrects for the problems associated with externally generated and populationsegment-specific price indices with out-dated price and weight base used so far in the official poverty estimation. He also includes the private expenditure on health and education which has been

rising over time and tests their adequacy to ensure certain desirable educational and health outcomes. The Tendulkar Committee raised the poverty line for 2004-05 from Rs 356.30 per capita per month based on previous assessment to Rs 446.68 for rural and Rs 538.60 per capita per month to Rs 578.80 for urban areas. The poverty headcount ratio correspondingly increased from 27.5% in 2004-05 to 37.2% in 2004-05.

Year	Poverty line		Poverty head count ratio		
	Rural	Urban	Rural	Urban	Total
2004-05	446.68	578.8	41.8	25.7	37.2

Source: Planning Commission (2009)

In 2012, the Planning Commission constituted a new expert panel on poverty estimation, chaired by C Rangarajan with the following key objectives:

1. to provide an alternate method to estimate poverty levels and examine whether poverty lines should be fixed solely in terms of a consumption basket or if other criteria are also relevant;
2. to examine divergence between the consumption estimates based on the NSSO methodology and those emerging from the National Accounts aggregates;
3. to review international poverty estimation methods and indicate whether based on these, a particular method for empirical poverty estimation can be developed in India, and
4. to recommend how these estimates of poverty can be linked to eligibility and entitlements under the various schemes of the Government of India. The Committee is expected to submit its report by 2014.

Some Types of Proverty

Cyclical Poverty- Cyclical poverty refers to poverty that may be widespread throughout a population, but the occurrence itself is of limited duration. In nonindustrial societies (present and past), this sort of inability to provide for one's basic needs rests mainly upon temporary food shortages caused by natural phenomena or poor agricultural planning. Prices would rise because of scarcities of food, which brought widespread, albeit temporary, misery. In industrialized societies the chief cyclical cause of poverty is fluctuations in the business cycle, with mass unemployment during periods of depression or serious recession.

Collective Poverty- In contrast to cyclical poverty, which is temporary, widespread or "collective" poverty involves a relatively permanent insufficiency of means to secure basic needs—a condition that may be so general as to describe the average level of life in a society or that may be concentrated in relatively large groups in an otherwise prosperous society. Both generalized and concentrated collective poverty may be transmitted from generation to generation, parents passing their poverty on to their children.

Concentrated Collective Poverty- In many industrialized, relatively affluent countries particular demographic groups

are vulnerable to long-term poverty. In city ghettos, in regions bypassed or abandoned by industry, and in areas where agriculture or industry is inefficient and cannot compete profitably, there are found victims of concentrated collective poverty. These people, like those afflicted with generalized poverty, have higher mortality rates, poor health, low educational levels, and so forth when compared with the more affluent segments of society.

Case Poverty- Similar to collective poverty in relative permanence but different from it in terms of distribution, case poverty refers to the inability of an individual or family to secure basic needs even in social surroundings of general prosperity. This inability is generally related to the lack of some basic attribute that would permit the individual to maintain himself or herself. Such persons may, for example, be blind, physically or emotionally disabled, or chronically ill. Physical and mental handicaps are usually regarded sympathetically, as being beyond the control of the people who suffer from them. Efforts to ameliorate poverty due to physical causes focus on education, sheltered employment, and, if needed, economic maintenance.

Absolute poverty –

Also known as extreme poverty or abject poverty, it involves the scarcity of basic food, clean water, health, shelter, education and information. Those who belong to absolute poverty tend to struggle to live and experience a lot of child deaths from preventable diseases like malaria, cholera and water - contamination related diseases. Absolute Poverty is usually uncommon in Developed countries. It was first introduced in 1990, the “dollar a day” poverty line measured absolute poverty by the standards of the world's poorest countries. In October 2015, the World Bank reset it to $1.90 a day. This number is controversial; therefore each nation has its own threshold for absolute poverty line.

Relative Poverty: It is defined from the social perspective that is living standard compared to the economic standards of population living in surroundings. Hence it is a measure of income inequality. For example, a family can be considered poor if it cannot afford vacations, or cannot buy presents for children at Christmas, or cannot send its young to the university. Usually, relative poverty is measured as the percentage of the population with income less than some fixed proportion of median income. It is a widely used measure to ascertain poverty rates in wealthy developed nations.

Situational Poverty: It is a temporary type of poverty based on occurrence of an adverse event like environmental disaster, job loss and severe health problem. People can help themselves even with a small assistance, as the poverty comes because of unfortunate event.

Generational Poverty: It is handed over to individual and families from one generation to the one. This is more complicated as there is no escape because the people are trapped in its cause and unable to access the tools required to get out of it. **Rural Poverty:** It occurs in rural areas with

population below 50,000. It is the area where there are less job opportunities, less access to services, less support for disabilities and quality education opportunities. People are tending to live mostly on the farming and other menial work available to the surroundings.

The rural poverty rate is growing and has exceeded the urban rate every year since data collection began in the 1960s. The difference between the two poverty rates has averaged about 5 percent for the last 30 years, with urban rates near 10–15 percent and rural rates near 15–20 percent (Jolliffe, 2004). **Urban Poverty:** It occurs in the metropolitan areas with population over 50,000.These are some major challenges faced by the Urban Poor: Limited access to health and education. Inadequate housing and services Violent and unhealthy environment because of over crowding. Little or no social protection mechanism.

Poverty in India After Independence

1950

Minhas published his estimates of poverty rates in 1950s India as cyclical and a strong function of each year's harvest. Minhas disagreed with the practice of using calories as the basis for poverty estimation and proposed a poverty line based on real expenditure per year (Rs 240 per annum). In 1956–57, a good harvest year, he computed India's poverty rate to be 65% (215 million people). For 1960, Minhas estimated the poverty to be 59%.

1960

A Working Group was formed in 1962 to attempt to set a poverty line for India. This Working Group used calories required for survival, and income needed to buy those calories in different parts of rural India, to derive an average poverty line of Rs. 20 per month at 1960-61 prices. Estimates of poverty in India during the 1960s varied widely. Dandekar and Rath, on the behalf of then Indian government, estimated that the poverty rate in 1960s remained generally constant at 41%. Ojha, in contrast, estimated that there were 190 million people (44%) in India below official poverty limit in 1961, and that this below-poverty line number increased to 289 million people (70%) in 1967. Bardhan also concluded that Indian poverty rates increased through the 1960s, reaching a high of 54%. Those above the 1960s poverty level of Rs 240 per year, were in fragile economic groups as well and not doing well either. Minhas estimated that 95% of India's people lived on Rs 458 per year in 1963–64, while the richest 5% lived on an average of Rs 645 per year (all numbers inflation adjusted to 1960-61 Rupee).

1970 – 1980-

Dandekar and Rath in 1971 used a daily intake of 2,250 calories per person to define the poverty line for India. Using NSSO data regarding household expenditures for 1960–61, they determined that in order to achieve this

food intake and other daily necessities, a rural dweller required an annual income of Rs 170.80 per year (Rs14.20 per month, adjusted to 1971 Rupee). An urban dweller required Rs 271.70 per year (Rs 22.60 per month). They concluded from this study that 40 percent of rural residents and 50 percent of urban residents were below the poverty line in 1960–61.Poverty alleviation has been a driver for India's Planning Commission's Task Force on Projections of Minimum Needs and Effective Consumption Demand of the Perspective Planning Division. This division, in 1979, took into account differences in calorie requirements for different age groups, activity levels, and sex. They determined that the average rural dweller needed around 2400 calories, and those in urban areas required about 2100 calories per person per day. To satisfy the food requirement, the Task Force estimated that a consumer spending in 1973–74 of Rs.49.09 per person per month in rural areas and Rs.56.64 in urban areas was appropriate measure to estimate its poverty line. Poverty remained stubbornly high in India through the 1970s and 1980s. It created slogans such as Garibi Hatao (meaning eliminate poverty) for political campaigns, during elections in early 1970s through the 1980s. Rural poverty rate exceeded 50%, using India's official poverty line for 1970s. Additionally, in 1976, the Indian government passed the Bonded Labor System Act in an effort to end debt bondage in India, a practice which contributes to generational poverty. Nevertheless, this system is still in place today due to weak enforcement of this law.

1990s-

Another Expert Group was instituted in 1993, chaired by Lakdawala, to examine poverty line for India. It recommended that regional economic differences are large enough that poverty lines should be calculated for each state. From then on, a standard list of commodities were drawn up and priced in each state of the nation, using 1973–74 as a base year. This basket of goods could then be re-priced each year and comparisons made between regions. The Government of India began using a modified version of this method of calculating the poverty line in India. There are wide variations in India's poverty estimates for 1990s, in part from differences in the methodology and in the small sample surveys they poll for the underlying data. A 2007 report for example, using data for late 1990s, stated that 77% of Indians lived on less than Rs 20 a day (about US$0.50 per day). In contrast, S.G.Datt estimated India's national poverty rate to be 35% in 1994, at India's then official poverty line of Rs 49 per capita, with consumer price index adjusted to June 1974 rural prices.

2000s-

The Saxena Committee report, using data from 1972 to 2000, separated calorific intake apart from nominal income in its economic analysis of poverty in India, and then stated that 50% of Indians lived below the poverty line. The Planning Commission of India, in contrast, determined that the poverty rate was 39%.The National Council of Applied Economic Research estimated that 48% of the Indian households earn more than Rs90,000 (US$1,261.80) annually (or more than US$ 3 PPP per person). According to NCAER, in 2009, of the 222 million households in India, the absolutely poor households (annual incomes below Rs45,000 (US$630)) accounted for only 15.6% of them or about 35 million (about 200 million Indians). Another 80 million households are in the income levels of Rs45,000 (US$630) to Rs90,000 (US$1,300) per year. These numbers are similar to World Bank estimates of the "below-the-poverty-line" households that may total about 100 million (or about 456 million individuals). The Suresh Tendulkar Committee set up to look into the people living under the poverty line in India submitted its report in November 2009. It provided a new method of calculating the poverty line based on per capita consumption expenditure per month or day. For rural areas, it was Rs 816 per month or Rs 27 per day. For urban areas, it was Rs 1000 per month or Rs 33 per day. Using this methodology, the population below the poverty line in 2009-2010 was 354 million (29.6% of the population) and that in 2011-2012 was 269 million (21.9% of the population).

Debates on poverty and growth in India

Famously, India's post-independence planners hoped that the country's urban-centered industrialization process would bring longer-term gains to poor people, including through rural labor absorption. However, that hope was largely shattered by the evidence of the slow pace of poverty reduction in the period from Independence until the 1980s. In explaining this, a number of observers pointed to the slow pace of labor absorption from agriculture associated with the more inward-looking and capital-intensive development path of this period. The urban population share has been rising steadily over time in India, from 17% in 1950 to 31% today. However, India's pace of population urbanization (proportionate increase in the urban population share) has been less than either South Asia as a whole or lower middle-income countries as a whole, and markedly slower than for (say) China. The trend rate of growth in India's Net Domestic Product (NDP) per capita in the period 1958-1991 was under 2% per annum. The picture that emerges from the accumulating evidence from India's National Sample Surveys (that started in the 1950s) indicates that economic growth in India up to the start of the 1990s, though slow, had in

fact been poverty reducing. Ravallion and Datt (1996) showed that the elasticity of the incidence of poverty with respect to mean household consumption was -1.3 over 1958-1991. Given the modest rate of growth over this period, success at avoiding rising inequality prior to the 1990s was key to this outcome. Many observers came to the view that too little growth was the reason for India's slow pace of poverty reduction. However, a deeper exploration of the data suggests that the sectoral pattern of growth also played a role. Using data up to the early 1990s, Ravallion and Datt (1996) found that rural economic growth was more poverty reducing, as was growth in the tertiary (mainly services) and primary (mainly agriculture) sectors relative to the secondary (mainly manufacturing and construction) sector. They also found that spillover effects across sectors reinforced the importance of rural economic growth to national poverty reduction. Urban growth and secondary sector growth had adverse distributional effects that mitigated the gains to the urban poor, while urban growth brought little or no benefit to the rural poor. The slow progress against poverty reflected both a lack of overall growth and a sectoral pattern of growth that did not favor poor people.

Economic reforms following the macroeconomic crisis of 1991-92 marked a significant change in India's economic landscape, ushering in a new phase of high economic growth. Growth rate of NDP per capita more than doubled in the period since 1992. There was much hope in India that the higher growth rates attained in the wake of the economic reforms would bring a faster pace of poverty reduction. However, there have also been signs of rising inequality in the post-reform period, raising doubts about how much the poor have shared in the gains from higher growth rates.

New evidence spanning 60 years

With the backdrop of this history of recent economic change in India, a new paper has revisited the implications for poverty of both the higher rate of growth and the pattern of growth (Datt, Ravallion and Murgai, 2016). The sectoral imbalance in India's post-reform growth would be a concern for poverty reduction if the model linking poverty to growth had remained the same, notably with the rural and agricultural sector contributing most to poverty reduction. However, previous research found signs that the process of economic growth had been changing in India, making urban economic growth more pro-poor in the post-reform period up to 2005-06 (Datt and Ravallion, 2011). It is important to know whether this pattern has continued in more recent data—to assess whether stronger linkages from urban economic growth to rural poverty reduction have continued, alongside a more economically diversified rural economy. The new paper aims to provide a "thick description" of India's long-term progress against poverty. For that purpose we have compiled a new data series on poverty

and related data spanning 60 years, extending the period of analysis in past research. While India's NSS's have been reasonably comparable over time as noted above, there are still some data problems, including some changes in survey design, and also a worrying degree of divergence between the NSS consumption aggregates and the private consumption component of domestic absorption in the national accounts. Our research tries as best we can to address these concerns.

With the benefit of nearly two decades of post-1991 data, we believe there is now sufficient data for the post-1991 period to test the poverty implications of the new rate and pattern of growth in post-reform India. Attribution to reforms *per se* is problematic, but further scrutiny of the emergent properties of the changing growth process with respect to poverty reduction is clearly important. The sectoral structure of NDP growth in the post-1991 period is of interest, as is the role played by population urbanization, including the Kuznets process that has been so influential in past thinking about the distributional implications of economic growth in poor countries.

India's long-run progress against absolute poverty is evident from the findings of Datt et al. (2016) using data spanning nearly six decades from 1957 to 2012. The following Figure provides a summary, giving both national accounts aggregates and the poverty rates for two poverty lines. The trend decline in the national incidence of poverty for our upper line was 0.65% points per annum, accumulating to a sizable fall in the poverty rate of more than 35% points. In proportionate terms, poverty incidence declined at the rate of 1.3% per annum.

Conclusion

Poverty is usually defined in a limited way in terms of an income based poverty line. However, poverty has several dimensions and the poor suffer deprivation in multiple ways and not just in terms of availability of income. Several forms of human deprivation, including poor survival chances, unjust employment of children, child prostitution, bonded labor, environmental pollution, domestic violence, and social exclusion arising out of caste and gender discrimination, are not related to income in a predictable manner (UNDP,1997). The poor also lack access to assets such as credit, literacy, longevity, voice, land, water, and forests. The incidence of income poverty in India has declined steadily between 1973-74 and 1999-2000 but the pace of reduction in poverty has varied considerably. There was a large decline in the percentage of the population in poverty throughout the 1980s, a slowdown in the rate of poverty reduction in the early 1990s, and a reported but contested 10% decline in poverty in the second half of the 1990s. The share of urban poverty increased from 18.7% in1973-74 to 24.5% in 1987-88 and fluctuated around this since then.

References:

1. Antoine-Nicolas de Condorcet, Sketch for a Historical Picture of the Progress of the Human Mind, 1795, as cited in Stedman-Jones (2004)
2. Antoine-Nicolas de Condorcet, Sketch for a Historical Picture of the Progress of the Human Mind, 1795, as cited in Stedman-Jones (2004), p-17
3. https://www.britannica.com/topic/poverty
4. https://www.jagranjosh.com/general-knowledge/what-is-poverty-and-its-types-1523453034-1
5. https://en.wikipedia.org/wiki/Poverty_in_India
6. https://economicsandpoverty.com/read/poverty-reduction-in-india-2/
7. Acharya, Sarthi, (1989), Agricultural Wages in India : A Disaggregated Analysis,
8. Journal of Agricultural Economics, Vol. 44, No.2, April – June.
9. Rural Poverty in India, Economic and Political Weekly, Review of Agriculture,
   September.
10. , Bina, (1989) Rural Women, Poverty and Natural Resources: Sustenance,
11. Sustainability and Struggle for Change. Economic and Political Weekly, October 28, Vol. 20 No. 51.
12. Alternative Survey Group (2001), Alternative Economic Survey, Rainbow Publishers, Delhi.
13. Amis, Phil, (2001) Thinking About Chronic Urban Poverty, Draft CPRC Working Paper. Balakrishna, S. and Rangacharyulu S.V., (ed.) Poverty Decline and Human
14. Development Factors in Some States, NIRD, Hyderabad, 1999.
15. Bhalla, G.S. (2000), "Indian Agriculture: Issues and Strategies", Paper presented at the Seminar on Reforms and Resurgent Republic, IIM, Bangalore, December 8-10.
16. Bhalla, G.S. and Singh Gurmail, (1997) Recent Developments in Indian Agriculture: A State Level Analysis, Economic and Political Weekly March 29, 32 (13).
17. Agricultural Economists (ASAE), IDS, Jaipur, October 18-20.

कोरोना वायरस : सर्तकता ही मुख्य उपाय

डा0 आलोक कुमार कश्यप
एसोसिएट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग,
महाराज बलवन्त सिंह पी0 जी0 कालेज,
गंगापुर, वाराणसी, उ0प्र0।
जयन्त गुप्ता
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बी0 डी0 एस0 पी0 महिला महाविद्यालय,
खोचवां, वाराणसी, उ0प्र0

जीवित कोशिका में वृद्धि कर सकने वाले अतिशुक्ष्म कोशिका को वायरस कहते हैं। इसी प्रकार से कोरोना वायरस भी है। यह वैसे तो मृत होता है, परंतु शरीर में प्रवेश करते ही जीवित हो जाता है। और हमारे फेफड़े को ग्रसित कर देता है आज यह वायरस दुनिया भर में फैल चुका है और लगभग दुनिया के सभी देश इसकी चपेट में आ गए हैं कोरोना वायरस से होने वाले बीमारी को वैज्ञानिकों ने कोविड–19 नाम दिया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे महामारी घोषित कर दिया।

मुख्य शब्द– कोरोना, वायरस, कोविड–19, संक्रमण, प्रवासी मजदूर, वैक्सीन।

सर्वप्रथम कोरोना वायरस की उत्पत्ति चीन की वुहान शहर (जो कि हुबेई प्रांत में स्थित है।) से मानी जाती हैं।सबसे पहले चीन इस महामारी की चपेट में आया। फिर धीरे–धीरे यह दुनिया भर में फैल गया। दुनिया के सभी शक्तिशाली देश जैसे– इटली, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, रूस ने भी इस महामारी के आगे घुटने टेक दिए। यह बीमारी नवंबर 2019 में पहचानी गई। और बहुत ही तेजी से देखते देखते पूरी दुनिया में फैल गई। यह बीमारी लोगों के आपसी संपर्क के द्वारा फैलता है। खांसने, छिकने और व्यक्तियों के थूकने से दूसरे व्यक्तियों में तेजी से फैलता है।

कोरोना वायरस से ग्रसित व्यक्तियों में दिखने वाले लक्षण–

1– कोरोना वायरस से पीड़ति व्यक्ति को सबसे पहले बुखार आता है।

2– फिर उसे सुखी– खासी आने लगती है तथा साथ में सर्दी, जुखाम जैसे लक्षण दिखाई देने लगता है।

3– यह वायरस धीरे–धीरे व्यक्ति के फेफड़ों पर अटैक करता है।

4– सात दिन के बाद सांस लेने में कठिनाई होने लगती है। और सांस न ले सकने के कारण व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

5– कुछ ऐसे भी संक्रमित व्यक्ति पाए गए हैं जिनमें किसी भी प्रकार का कोई भी लक्षण दिखाई नहीं दे रहा है।

पूरे विश्व में लगभग 2 करोड़ से अधिक लोग इस महामारी की गिरफ्त में आ चुके हैं। इस बीमारी से लगभग एक करोड़ 30 लाख लोग सही भी हो चुके हैं लगभग 7 लाख से अधिक लोगों

की जान भी जा चुकी है।63 लाख लोग अभी भी इस बीमारी से जूझ रहे हैं। इस महामारी से मरने वाले लोगों में सबसे अधिक अमेरिका के नागरिक हैं। भारत की बात करें तो 09/08/ 2020 तक 21 लाख लोग इस बीमारी से ग्रसित हो चुके हैं लगभग 15 लाख लोग सही होकर अपने घर जा चुके हैं 45 हजार से अधिक लोग इस महामारी के कारण काल के गाल में समा चुके हैं। मरने वालों की संख्या आगे और भी बढ़ सकती है।

विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों का दावा है कि कोरोना वायरस अपने रूप को परिवर्तित कर ले रहा है। जिसके कारण वैक्सिन बनाने में अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है परंतु कुछ देशों ने दावा किया है कि उन्होंने इस का सफल परीक्षण किया है और सितंबर माह के प्रथम सप्ताह में वैक्सीन मिलना शुरू हो जाएगा।

भारत में कोरोना वायरस पहली बार केरल राज्य के 1 छात्र जो हाल ही में चीन से लौटा था। उसमें कोरोना वायरस की पुष्टि हुई थी। कोरोना वायरस के जांच का नाम **RTPCR** है। धीरे–धीरे यहां वायरस पूरे भारत को अपनी चपेट में ले लिया। कोरोना वायरस महाराष्ट्र के मुंबई जिले को बुरी तरह से प्रभावित किया और अन्य राज्य भी इसकी गिरफ्त में हैं।

कोरोना वायरस के कारण भारत के प्रत्येक क्षेत्र में समस्याएं देखने को मिली कोई भी क्षेत्र इस महामारी से अछूता नहीं रहा।

कोरोना वायरस ने पूरे देश की अर्थव्यवस्था को हिला कर रख दिया । सभी कारखाने,फैक्ट्रियां बंद कर दी गई। सभी प्रकार के उत्पादन पर रोक लगा दी गई रेलवे, हवाई जहाज, बसे बंद कर दि गई। जिसका सीधा असर मजदूरों पर देखने को मिला । जो प्रवासी मजदूर अपना घर छोड़कर दूसरे प्रांत कमाने गए थे उनके सामने बहुत बड़ी संकट आ गई। मजदूर अपने परिवार के साथ गांव लौटने को मजबूर हो गए। सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर गांव पहुंचे और गांव में भी वही समस्या सामने खड़ी है दो वक्त की रोटी का इंतजाम कैसे किया जाए ? इसी वजह से पूरे देश में मंदी छा गई।

पूरे भारत में 24 मार्च 2020 को लाक डाउन कर दिया गया। जिसके कारण मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों, चर्च आदि को बंद कर दिया गया । जिससे वहां पर भीड़ इकट्ठा ना हो सके और लोगों को इस बीमारी से बचाया जा सके। भारत जैसे देश में जहां विवाह को अनिवार्य माना जाता है उस पर भी कुछ समय के लिए रोक लगा दी गई।

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा दिशा निर्देश जारी कर के स्कूलों ,कालेजों को पूरी तरह से बंद कर दिया गया । अब अध्यापकों द्वारा बच्चों का ऑनलाइन क्लास लिया जाने लगा भारत में मोबाइल लैपटॉप और इंटरनेट आदि की सुविधा ना हो पाने के कारण अधिकतर बच्चे इस शिक्षा से वंचित रह गए। मार्च महीने में बहुत सारे विश्वविद्यालयों के परीक्षाएं चल रही थी जिससे वहां की परीक्षाएं अधूरी रह गए।

कुछ स्कूलों में फीस लेने के लिए मनमाने तरीके से छोटे बच्चों का ऑनलाइन क्लास चलाया गया और परीक्षाएं ली गई जिसका सीधा असर छात्रों के शारीरिक और मानसिक रूप पर पड़ा। कुछ छात्र परीक्षा छूटने के कारण मानसिक रूप से चिंतित रहने लगे हैं और कुछ बच्चे लगातार मोबाइल में क्लास चलने के कारण उनकी आंखों में और मस्तिष्क में दर्द की समस्या होने लगी।

लॉक डाउन के दौरान यदि कोई सबसे बेबस और लाचार दिखा तो वह थे भारत के प्रवासी मजदूर भाई जो अपने गांव शहर राज्य को छोड़कर दूसरे गांव शहर राज्य कमाने गए थे लॉकडाउन के कारण उनकी मजदूरी छीन गई यह भी रोजगार हो गए आवागमन के सारे साधन बंद हो जाने

के कारण वह अपने पैतृक गांव पैदल जाने को मजबूर हो गए भूखे प्यासे पेट सैकड़ों किलोमीटर का सफर तय कर के।ना जाने कितनी औरतों ने घर जाने के दौरान सड़कों पर ही अपने बच्चो को जन्म दिया।कितनी गर्भवती औरतों ने अत्यधिक पैदल चलने के कारण सड़को पर ही दम तोड़ दिया।

कोरोना वायरस से बचने के उपाय–

1– लोग अधिक से अधिक अपने घरों में रहें जिससे अन्य व्यक्तियों के संपर्क में ना आ सके।
2– सामाजिक दूरी का पालन करें।
3– अपने हाथों को बार–बार साबुन से धोएं।
4– अत्यधिक आवश्यक कार्य पड़ने पर ही घर से बाहर निकले।
5– घर से बाहर निकलने पर मास्क और सैनिटाइजर का प्रयोग करें।
6– रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली चीजों का प्रयोग करें।
7– बूढ़े और बच्चों को घर से बाहर ना निकलने दें।
8– आप रोज़ जिस समय सोते हैं उसी समय सोएं और जब उठते हैं उसी समय उठें.
9– अपनी स्वच्छता पर ध्यान दें.
10– नियमित समय पर पौष्टिक खाना खाएं.
11– नियमित रूप से कसरत करें. बस 3–4 मिनट की हल्की–फुल्की शारीरिक कसरत से भी मदद मिल सकती है, जैसे कि चहलक़दमी या स्ट्रेचिंग.
12– काम करने और आराम करने का समय तय करें.
13– ऐसी चीज़ों के लिए समय निकालें जिन्हें करने में आपको मज़ा आता है.
14– ज़्यादा समय तक कंप्यूटर स्क्रीन को देखते हुए काम करने के दौरान नियमित रूप से ब्रेक लें.यह न करें: डर, बेचैनी, बोरियत और सामाजिक अकेलेपन से लड़ने के लिए शराब या नशीली दवाओं का इस्तेमाल न करें.

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोविड–19 की वैक्सीन को लेकर रूस से अंतरराष्ट्रीय गाइड लाइंस को मानने की अपील की है. रूस ने अक्टूबर से अपने यहां टीकाकरण अभियान चलाने की बात कही है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के प्रवक्ता क्रिस्टियन लिंड मेयर ने मंगलवार को कहा, "कई बार कुछ रिसर्चर व्यक्तिगत तौर पर कहते हैं कि उन्हें कुछ मिला है, निश्चित तौर पर यह एक अच्छी ख़बर है. लेकिन कारगर वैक्सीन को तलाशना और उसके बार में कोई क्लू मिलना और उसके सभी चरणों से गुजरने में बड़ा अंतर है ।."

पिछले सप्ताह रूस की सरकार ने घोषणा की है कि वह बड़े स्तर पर टीकाकरण अभियान शुरू कर रही है. लेकिन रूसी वैक्सीन डब्ल्यू एच ओ की उन छह वैक्सीनों में शामिल नहीं है, जो क्लिनिकल ट्रायल के तीसरे चरण तक पहुंचे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1- गांधी मो0क0 (2017) गांधी जी ने कहा था, सस्ता साहित्य मण्डल, प्रकाशन, नई दिल्ली
2- www.ilo.org>topic>labour-migration>long-in
3- http://www.chhyiyaias.com
4. https://hindi.webdunia.com/hindi-essay/coronavirus-essay-

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

नारी उत्थान में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का योगदान

डॉ0 बच्चा प्रसाद
प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग
एस0 बी0 एम0 पी0 जी0 कालेज
पावानगर फाजिलनगर कुशीनगर

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का प्रथम लक्ष्य समाज में सदियों से पीड़ित शोषित दलित एवं कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करना था। भारतीय समाज में व्याप्त विषमता को समाप्त करने के लिए किए गये आन्दोंलनों में उन्होंनें देखा कि दलितों के बाद भारतीय समाज में सर्वाधिक पीड़ित नारी समुदाय है।भारत की नारी उत्थान–पतन पुस्तक में उन्होंनें अपने विचारों को व्यापक रूप में प्रकट करते हुए कहा कि नारी उत्थान के बिना भारतीय समाज का संतुलित विकास नही हो सकता। इसे उन्होंनें इन शब्दों में प्रकट करते हुए कहा "मै किसी भी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगाता हूं कि उस समाज की महिलाओं ने कितनी प्रगति की है।"[1] समाज में महिलाओं को घरों और झोपड़ियों से बाहर निकालकर उनके अस्तित्व की हैसियत से उनको अवगत कराया जाय जिससे, वे भी पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर अपना उचित विकास कर सकें। डॉ0 अम्बेडकर ने भारतीय नारी समुदाय की मुख्य समस्याओं जैसे– अशिक्षा, गन्दगी,बाल–विवाह, अधिक सन्तान, छुआ–छूत, श्रम एवं मजदूरी की निम्न दशा तथा पुरूषों की नशाखोरी, के चलते नारी समुदाय का जीवन बड़े ही कष्ट में व्यतीत हों रहा था। इसलिए उनका स्पष्ट मानना था कि जब तक नारी को उसकी वर्तमान दयनीय अवस्था से उपर नहीं उठाया जाता तब तक वह सामाजिक पुनर्निमाण में अपेक्षित योगदान नही दे सकती। इसलिए समाज की उन्नति के लिये दलित महिलाओं को भी पुरूषों के साथ आगे आना होगा।

डॉ0 अम्बेडकर ने भारत में पीड़ित दलित नारियों को समान अधिकार दिलाने के लिये उन्होंनें उसी प्रकार संघर्ष किया जैसा कि दलितों के लिये किया था। उनका मानना था कि देश में नारी और दलितों की दशा एक जैसी है। हिन्दू धर्मग्रन्थों विशेषकर मनुस्मृति ग्रन्थ में नारियों को शूद्रों के समकक्ष रखा गया है। समाज में आरम्भ से ही बालिकाओं के साथ भेद–भाव का व्यवहार किया जाता रहा है। जैसे सम्पति में नारियों को पुरूषों के बराबर अधिकार नही दिये गये है।[2] परिवार व समाज के अन्दर नारियों को निम्न स्थान देने के साथ उनके प्रति हर स्तर पर शोषण किया जाता रहा है। अर्थात केवल ज्ञान के अभाव में इतना अनर्थ हो गया। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की योग्यता एवं कार्यकुशलता के कारण उन्हें समय– समय पर अनेक पदों पर प्रतिष्ठापित किया गया । इस क्रम में जब इन्हें 1942 ई0 में भारत की कार्यकारिणी परिषद में श्रम सदस्य बनाया गया, तो उन्होंनें अपने कार्यकाल 1942–46 में श्रमिकों को उनके अधिकार दिलाने में अपना अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ0 अम्बेडकर नें श्रमिको के कल्याण हेतु पूरे देश में सेवायोजन कार्यालय की स्थापना की। जिसमें महिला/पुरूषों का नाम पंजीकृत कर उन्हें उनकी योग्यतानुसार काम उपलब्ध कराने के साथ ही सरकार से यह आदेश पारित कराया कि प्रबंधक/मिल मालिक सेवायोजन कार्यालय के बाहर से श्रमिकों की भर्ती नही करेंगें । इसके साथ ही उन्होंनें यह नियम लागू कराया कि रात में किसी स्त्री को खानों में काम करने नही भेजा जायेगा । एवं जिन स्थानो

पर सीधे खड़े होकर काम नही किया जा सकता है,वहां स्त्रियों को काम पर नही भेजा जायेगा। वास्तव में श्रमिकों विशेषकर महिला श्रमिकों को काम करने में आने वाली व्यवहारिक समस्यायों का समाधान करने एवं सम्मान दिलाने में उनकी भूमिका अविस्मरणीय रही है।[3] स्वतंत्र भारत में संविधान की रचना करने में डॉ0 अम्बेडकर को महत्वपूर्ण भूमिका मिली तो उन्होंनें नारी समाज की रक्षा को सर्वोपरि महत्व दिया। संविधान के माध्यम से इन्हें समान अधिकार उपलब्ध कराये जिससे कि वे स्वतंत्रतापूर्वक पुरूषों के समक्ष खड़ा हों सके।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने संविधान में महिलाओं को निम्नलिखित अधिकार प्रदान कराये हैं।–

संविधान के अनुच्छेद 15 के भाग दो के तहत नारी को सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश व उपयोग से वंचित न करने का प्रावधान कम साथ महिलाओं को समानता प्रदान करने की दृष्टि से आवश्यक हो तो राज्य को विशेष कानून बनाने का प्रावधान किया है। अनुच्छेद 16, के भाग दो के तहत सरकारी सेवाओं मे स्त्रियों को अनुच्छेद 19,के भाग एक के तहत नारी को विविध स्वतंत्रता प्रदान किये जाने का क्रान्तिकारी प्रावधान इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है।

संविधान के भाग 4 में नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत स्त्रियों को पुरूषो के समान जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने के साथ ही समान कार्य के लिये स्त्रियों को भी पुरूषों के समान वेतन दिये जाने तथा मजदूर स्त्रियों के स्वास्थ्य की देख–भाल को सुनिश्चित करने वाली नीतियां बनाने अनुच्छेद 39 तथा कार्य को मानवचित दशाओं सुनिश्चित करने के साथ प्रसूति सहायता के लिये अनुच्छेद 42 में निर्देश दिया गया है।

डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत विधि के समक्ष स्त्रियों को भी पुरूषों के समान समानता का अधिकार प्रदान किया गया है।इसके साथ ही संविधान के अनुच्छेद 15,1 एवं अनुच्छेद 15,3 के अंतर्गत स्त्रियों को विभिन्न क्षेत्रों में समानता के अधिकारों की प्राप्ति हेतु प्रावधान किया । संविधान के भाग 15 अनुच्छेद 325 में महिलाओं को भी पुरूषें के समान राजनीतिक अधिकार प्रदान करने के साथ अनुच्छेद 51 ए.ड़ में नागरिकों के मौलिक कर्तव्य के रूप में यह निर्धारित किया है कि पुरूष समाज ऐसे परम्पराओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरूद्ध हो।

उपर्युक्त संबैधानिक प्रावधानों के आधर पर प्रसिद्ध चिन्तक डॉ0 मेघवाल का कहना सत्य प्रतीत होता है कि सदियों से उत्पीड़न की व्यथा झेलकर नारी इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि वह देवी कम रूप में नही बल्कि एक मानव की तरह जीवन को जीना चाहती है।[4] और यह मानव की तरह जीवन जीने का अधिकार डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान के माध्यम से महिलाओं प्राप्त कराया है।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर अपने गहन अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पर पहुंचे थे कि नारी की समस्या का मूल कारण शस्त्रीय विधान है,जो निहित स्वार्थों से प्ररित होकर लिखे गये है। उन्होंनें मनुस्मृति का सूक्ष्म अध्ययन कर उन अंशों को पृथक करने का प्रयास किया है, जो नारी समाज पर विविध प्रकार के निर्योग्यताओं को थोपते है। जिन्हे दूर किया जाना अतिआवश्यक है। डॉ0 अम्बेडकर ने इन निर्योग्यताओ को दूर करने एवं इसे कार्यरूप में परिणित करने के लिये ''हिन्दू कोड बिल'' की रचना की। इस कानून में बाल–विवाह पर प्रतिबन्ध, जीवनसाथी के चुनाव के साथ अंतरजातीय विवाह का अधिकार ,तलाक का अधिकार,सम्पति का अधिकार तथा गोद लेने एवं संरक्षकता के अधिकार का प्रावधान था। डॉ0 अम्बेडकर ने भारत के कानून मंत्री के रूप में इस कानून को बनाने एवं उसे लागू करने की इच्छाशक्ति से नारी समाज की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन का प्रादुभार्व हुआ।

डॉ0 अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल को संसद में 5 फरवरी 1951ई0 को प्रस्तुत करते समय कहा कि ,यदि आप हिन्दू व्यवस्था , हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समाज की रक्षा चाहते है, तो इनमें जो दोष पैदा हो गये हैं उनको सुधरने में आपको थोड़ी भी झिझक व संकोच नही होनी चाहिए। क्योंकि हिन्दू कोड बिल, हिन्दू व्यवस्था में केवल उन्हीं अंशो में सुधार चाहता है, जो विकृत हो गये है, उससे अधिक कुछ नही। अतः संसद को इसका समर्थन अवश्य करना चाहिए। वस्तुतः अम्बेडकर का सोचना था कि प्रगति के लिये कुछ त्याग करना जरूरी होता है क्योंकि सन्तो का वचन है कि पृथ्वी पर अच्छी चीजें स्वर्ग से नही गिरा करती, प्रत्येक प्रगति की कुछ कीमत होती है। जो लोग इस कीमत को चुकाते है,वे ही प्रगति करते है।[5] हिन्दू कोड बिल को लेकर तत्कालीन संसद में और उसके बाहर काफी वाद–विवाद हुआ। इसके प्रति लोंगो की मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। कूछ लोंगो ने गर्मजोशी से स्वागत करते हुए इसे प्रगति एवं क्रान्तिकारी कदम निरूपित करते हुए डॉ0 अम्बेडकर को 'आधुनिक मनु' से भी संबोधित किया। दूसरी ओर ऐसे लोग भी थे जिन्होंने इसका कड़ा विरोध करते हुए इसे, जल्दबाजी में उठाया गया कदम कहकर कहा कि इस कानून के बन जाने से लोगो के जीवन में अवांछित हस्तक्षेप होगा। डॉ0 अम्बेडकर ने 'हिन्दू कोड बिल' के निर्माण में अपना जीवन समर्पित कर दिया।

डॉ0 अम्बेडकर ने अस्वस्थ होने के बावजूद भी वे हिन्दू कोड बिल को बनाने और संसद में पारित कराने के लिए जी जीन से जुटे रहे , क्योंकि उनकी मान्यता थी कि इस बिल के लागू हेने से भारतीय समाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया जा सकता है। दुभाग्य से देश के रूढ़िवादियों और कट्टरपंथियों ने इस हिन्दू कोउ बिल का संसद में पेश होते ही उसका कड़ा विरोध करना षुरूकर दिया । यहां तक कि त्तकालीन लोकप्रिय एवं प्रगतिवादी प्राानमंत्री नेहरू भी इन विरोधों के सामने कुछनही कर सके । इस कानून से उत्पन्न विवाद को दृष्टिगत रखते हुए इसे पारित किये जाने हेतु सदन के पटल पर रखने के निर्णय को स्थगित करना पड़ा।[5] डॉ0 अम्बेडकर को इस निर्णय से बहुत दुःख हुआ, और उन्होनें कहा कि इस देश की विधायिका में समाजिक सुधार के क्षेत्र में जो कदम उठाए गये है उसमें हिन्दू कोड बिल सबसे महत्वपूर्ण है। वर्ण तथा लिंग के बीच जो असमानता समाज में उपस्थित है,उससे आंख मूदकर आर्थिक समस्याओ के सम्बन्ध में कानून बनाया जाना संविधान का मजाक है। वास्तव में यह उस महल के समान है जो गोबर के ढेर पर बनाया गया है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर हिन्दू कोड बिल को कानूनी रूप दिए जाने और उसे लागू करने के लिए मंत्रिमंडल में अनेक विषयों पर मतभेद होने के बावजूद वे मंत्रिमंडल में बने रहे।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने 17 सितम्बर 1951 हिन्दू कोड बिल को पुनः प्रस्तुत किया लेकिन संसद के भीतर एवं बाहर इस कानून की कतिपय धाराओं पर भारी मतभेद के चलते कानून पारित न हो सका। जिससे निराश व दुःखी होकर 27 सितम्बर 1951ई0 को मंत्रीमंडल से त्यागपत्र दे दिया। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने त्यागपत्र देने के पांच कारण बताये। लेकिन उसमें महत्वपूर्ण कारण हिन्दू कोड बिल के प्रति सरकार द्वारा की गयी उदासीनता थी। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जिस रूप में हिन्दू कोड बिल को पारित कराना चाहते थे उस रूप में वह पारित न हो सका, लेकिन नारी समाज के सुधार का जो वीणा उठाया उसका सरकार व समाज उपेक्षा न कर सकी।

देश में जनवरी 1952 में प्रथम आम चुनाव हुए जिसमें डॉ0 भीमराव अम्बेडकर कांग्रेस प्रत्याशी एस0एन0 कजरोलकर से चुनाव हार गये। लेकिन डॉ0 भीमराव अम्बेडकर बम्बई विधान मंडल की ओर से राज्य सभा की सदस्यता के लिये हुए चुनाव में सफल होकर संसद में पहुंच गए। कांग्रेस की सरकार में एस0 एन0 कजरोलकर कानून मंत्री बने।कजरोलकर नें हिन्दू कोड बिल

कानून को पारित कराने की इच्छा जाहिर की ।इस हेतु उन्होंनें कानून की बारीकियों एवं सूक्ष्म तथ्यों को जानने हेतु डॉ0 भीमराव अम्बेडकर से सम्पर्क किया।[7] डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल को पारित कराने में कानून मंत्री को निरन्तर सहयोग एवं मार्गदर्शन दिया। जिससे हिन्दू कोड बिल के अधिकांश भाग चार भागों – हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, द हिन्दू सक्सेशन एक्ट 1956, द हिन्दू माइनारिटी एक्ट 1956, द हिन्दू एडोप्शन एक्ट 1956 में विभक्त होकर पारित हुआ।

वासतव में हिन्दू कोड बिल के पीछे डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का तत्कालीन लक्ष्य नारी की सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार लाना था। वही उनका दूरगामी लक्ष्य समता पर आधारित हिन्दू समाज की स्थापना के लिये वैधानिक पृष्ठभूमि का निर्माण करना था। हिन्दू कोड बिल स्वतंत्रता ,लैगिक समानता एवं बंधुत्व पर आधारित एक नए भारतीय समाज की रचना के प्रयास का एक लक्ष्य था जो 'मील का पत्थर साबित हुआ।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने नारियों की तत्कालीन समय में उनकी मार्मिक दीन– हीन दशा से द्रवित होकर अनेक साहसिक कदम उठाये। जिसके परिणामस्वरूप नारियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। देश की आजादी के बाद सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों में महिला उत्थान के कार्य की प्राथमिकता सदैव बनी रही।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. मून वसंत, डॉ0 बाबा साहब अम्बेडकर, प्रशान्त पाण्डे , (अनुदित) प्रकाशित नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इण्डिया नई दिल्ली 1991 पृष्ठ संख्या 88–89
2. आर0 जी0 सिंह, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार''भोपाल म0प्र0 हिन्दी ग्रंथ अकादमी , प्रकाशित 1991, पृष्ठ संख्या 111 से उदधृत।
3. कृष्ण कुमार यादव, दमनात्मक संकेतों के विरूद्ध विद्रोह के प्रतीक : डॉ0 अम्बेडकर'' अम्बेडकर इन इंडिया मासिक पत्रिका अंक दिसम्बर 2010 पृष्ठ संख्या 10 से उदधृत
4. कुसुम मेघवाल, भारतीय नारी के उद्धारक डॉ0 अम्बेडकर, काली चरण स्नेही संपादक भारतरत्न डॉ0 भीमराव अम्बेडकर आलमपुर से प्रकाशित 1991 ई0 पृष्ठ संख्या 76 से उद्धृत
5. आर0डी0 सोनकर, क्रान्तिकारी महापुरूष डॉ0 भीमराव रामजीराव अम्बेडकर, दिसम्बर 2010 के मासिक पत्रिका अम्बेडकर इन इण्डिया के पृष्ठ संख्या 21 से उदधृत।
6. डॉ0 एस0 के0 धवन, डॉ0 अम्बेडकर ए सेलेक्ट प्रोफाइल'' बेव प्रकाशन 1991 ई0 नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 03
7. डॉ0 भारती, गांधी और अम्बेडकर का योगदान दलित एवं महिला उत्थान में, गौतम बुक सेन्टर , प्रकाशक एवं वितरक नई दिल्ली 2009 ई0 पृष्ठ संख्या 115

नई कविता में जीवन मूल्य

डॉ0 कंचन त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
ए0पी0एन0पी0जी0
कालेज, बस्ती

नये जीवन मूल्यों की खोज तब की जाती है जब पुराने जीवन मूल्यों की युग जीवन मे कोई अर्थवत्ता नहीं रह जाती है। युग जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों को जब पुराने मूल्य आत्मसात नहीं कर पाते, उन्हे अभिव्यक्ति देने में असमर्थ होते हैं, तब नये जीवन मूल्यों के तलाश की प्रकिया प्रारम्भ होती है। नयी कविता के साथ नयी जीवन व्यवस्था और पगम्परागत मूल्यों की निरर्थकता एंव नये मूल्यों की स्थापना का प्रश्न बराबर महत्वपूर्ण रहा हैं। सामजिक परिवर्तन में आधुनिक जीवन की दृष्टि परिवर्तित हुई। उसमें एक तार्किक जीवन पद्धति का अविष्कार हुआ।

यह कहना अधिक प्रासंगिक होगा कि नई कविता के कवि का विद्रोही स्वर आमूल्य परिवर्तन की मांग करता है। उसे अपने वर्तमान को अपने अनुरूप बनाने का लक्ष्य हमेशा प्रभावित करता है। नयी कविता मानव जीवन के अन्तः और बाह्य दोनों पक्षों की वास्तविकता को बड़ी ईमानदारी से अभिव्यक्ति देती है। बौद्धिकता और तर्कशीलता का ही परिणाम है कि आदर्ष के परम्परागत केन्द्र (ईश्वर, धर्म आदि) ध्वस्त हुये। धार्मिकता प्रश्नांकित हुई। नयी कविता का कवि यह मानता है कि मानव जीवन की दुर्गाति का एक बहुत बड़ा कारण ईश्वर एंव धर्म के प्रति अंधी श्रद्धा एंव विश्वास है। इसीलिये यह ईष्वर एंव धर्म की शरण में नहीं जाना चाहता है, उसे अपनी दुर्बलता, अपनी शक्ति , क्षमता का पूर्णरूपेण ज्ञान है।

''नहीं , नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं मांगूंगा
अर्जित करूंगा इसे मरकर , बिखरकर
आज नहीं कल सही आऊंगा उबरकर
कुचल भी गया तो लज्जा किस बात की
रोकूंगा पहाड़ गिरता
शरण नहीं मागूंगा,
नहीं नही, प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं मागूंगा।'' 1

नई कविता के लिये ईश्वर हास्यास्पद एवं व्यंग्यात्मक सत्ता है जैसा कि निम्नलिखत पंक्तियों से स्पष्ट है–

''रात मैने स्वप्न देखा.....
कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गयी है
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे है,

उर्वशी ने डांस स्कूल खोल दिया है,
नारद गिटार सिखा रहे है,
गणेश टॉफी खा रहे है,
और वृहस्पति अंग्रजी में अनुवाद कर रहे है।'' 2

विश्वास, आदर्ष एंव मान्यताओं की ऐसी स्थिति ने अनेक विसंगातियों एंव विडम्बनाओं को जन्म दिया। विसंगति का तात्पर्य है कि अन्तर्विरोध की अजीब स्थिति। आज का मानव समाज एक दुविधापूर्ण स्थिति में जी रहा है। एक ओर तो नई सभ्यता, संस्कृति एंव सुविधाओं को स्वीकार करता है तो दूसरी ओर वह पुरानी मान्यताओं से जुड़ भी रहना चाहता है। नयी कविता मानव समाज की इसी विसंगाति और विडम्बना पूर्ण स्थिति को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। आज के समाज की दुविधापूर्ण स्थिति पर प्रकाश डालता हुआ नयी कविता का कवि कहता है–

'' सुख मिला
उसे हम कह न सके,
दुख हुआ
उसे हम सह न सके
संस्पर्श वृह्त् का उतरा सुरसरि सा
हम बह न सके
यों बीत गया सबः हम मरे नहीं
पर हाय कदाचित्
जीवित भी हम रह न सके।''3

युग जीवन मे व्याप्त इस विसंगाति , शंका आदि को व्यक्त करने के लिये नयी कविता पौराणिक मिथको का नूतन अर्थ प्रयोग करती है–

''जाने कितने कारावासी वासुदेव
स्वयं अपने कर में शिशु आत्मज ले
बरसाती रातों में निकले
घंस रहे अंधेरे जंगल में
विक्षुध्द पूर में यमुना के
अति दूर, अरे , उस नन्द ग्राम की ओर चले।
जाने किसके डर स्थानान्तरित कर रहे वे
जीवन के आत्मज सत्यों को।
किस महाकंस से भय खाकर गहरा गहरा।।''4

यथार्थवादी जीवन दृष्टि ने नयी कविता के कवियों को वास्तविक जीवन चित्रण के लिये बाध्य किया। मध्यवर्गीय जीवन की विशमताओं तथा आर्थिक वैशम्य को इन कवियों ने विशेष रूप से चित्रित किया।

''जयति जयति जय सर्वमंगला' में नागार्जन ने पूस महीने की धूप के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय जीवन में व्याप्त विशमता एवं अभाव को बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

'' पूस मास की धूप सुहावन
घिसें हुए पीपल सी पांडुर
पूस मास की धूप सुहावन
स्तनपायी निराश गौर छवि
शिशु के गालों जैसी मनहर
पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल के कंकण बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भ भार से अलस शिथिल है अंग अंग
मुँह पर उसके मटमैली आभा।।''5

पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति असन्तोष एंव विद्रोह का स्वर नयी कविता में विशेष रूप से देखा जा सकता है। मुक्तिबोध, अज्ञेय, रामविलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, आदि कवियों ने पूंजीवादी व्यवस्था पर बड़े ही तीखे शब्दो में आक्रोश एंव विद्रोह व्यक्त किया है। मुक्तिबोध लिखते है–

''तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
मेरी ज्वाल जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से जो चले अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ,
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।।'' 6

वर्तमान समाज व्यवस्था के प्रति असन्तोष व्यक्त करता हुआ कवि कहता है–

''कविता में कहने की आदत तो नहीं
पर मैं यह कह दूँ कि
वर्तमान समाज चल नहीं सकता।।''7

नयी कविता का कवि तथाकथित देशों द्वारकों पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि–

''मृदुल नींद नीड़ की गोद में,
और परों की सेज नरम
बाहर झुलकी हवा बह रही
रह रह कर लू तेज गरम
बाहर अर्द्धनग्न पीड़ा
भीतर क्रीड़ा लवरेज हरम
करूणा के आंगन में नेता
दे थोडी सी भेज शरम।।''8

पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट करके नयी समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने की ललक नयी कविता में हैं। इसीलिए नयी कविता का कवि कहता है–

''अब अभिव्यक्ति के खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने होगें ही मठ और गढ़ सब।।'' 9

अपने परिवेश का चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि–

''हर तरफ शब्दबेधी सन्नाटा है,
दरिद्र की व्यवस्था की तरह
उचाट और कुढ़ता हुआ
घृणा में डूबा सारा का सारा देश
पहले की तरह आज भी
मेरा कारागार है।।'' 10

कवि इस जड़ एवं भयावह स्थिति से ऊब कर कह उठता है–

''चीख अपने होने की पीड़ा से चीख
लीक तोड़
अब और तरह मत दे
साफ साफ कह दे
भूख जो कल तक रोशनी थी
आज नींद से पहले का जागरण है
सुविधा परस्त लोंगों के ऊसर दिमाग में
X X X X X X X X X X X X X X X
अपने देश की मिट्टी को ऑख की
पुतली समझता है।
वरना आज रोटी के टूकड़े पर

किसी भी भाषा में देश का नाम लिखकर
खिला देने से
कोई देशभक्त नहीं होता।।" 11

वर्तमान शासन व्यवस्था पर किये गये व्यग्य की दृष्टि से भारत भूषण अग्रवाल की निम्न पंक्तियॉ उल्लेखनीय है–

" और यह भी पढ़ाया जायेगा
कि एक और राज्य था
जो संसार भर में क्रांति का मंत्र फुॅकता रहा
पर जिसे अपने ही घर में
भाई–भाई के बीच दीवार खड़ी करनी पड़ी
जो हर पराधीन देश की मुक्ति में लगा रहता था
पर जिसके अपने ही अंग पराये बन्धन में जकड़े रहे।। 12

''महासागर रात' में कवि ने नागरिक सभ्सता पर व्यंग्य किया है –

" ये खेल तमाशे, नये सिनेमाघर और थियेटर
ये गलियों के नुक्कड, नुक्कड़ पर पेशाब घरों की सुविधा
ये कचरा पेटियां सुघड रंगीन आह
कचरे के लिये यहॉ कितना आकर्षक
असंदिग्ध से सभी सभ्यता के लक्षण हैं।।" 13

वर्ततान स्थिति पर व्यंग्य हुये अज्ञेय जी ने लिखा है–

''जो लोग पुल बनायेगे,
वे अनिवार्यतः
पीछे रह जायेगे
सेनाये हो जायेंगी पार
मारे जायेगें रावण
जयी होगें राम
जो निर्माता रहे
इतिहास में बन्दर
कहलायेगे।।" 14

नयी कविता में देश की शासन व्यवस्था सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों तथा राजनीतिज्ञों एंव समाज सुधारको के प्रति असन्तोष एंव विद्रोह का भाव अत्यन्त तीखे स्वरों में व्यक्त हुआ है। इसके साथ ही साथ परम्परागत रूढ जड़ मान्यताओं एंव आदर्शो के प्रति भी आक्रोश तथा व्यग्ंय़ की अभिव्यक्ति हुई है।

नयी कविता मुक्ति के लिये धैर्य, आस्था एंव विश्वास के मूल्यों की स्थापना करती है–

''जब तक मै बिखरूंगा नहीं, मै मरूगां नही,
जब तक मेरा यह विश्वास है
कि समय की अनवरत् तीव्र धाराएँ,
कहीं मैं ठहरूंगा,, कहीं किनारा पाऊंगा
टूटेगा नहीं टूटेगा नहीं।।'' 15

नयी कविता में जिस चरम मूल्यों को प्रतिष्ठा मिली है वह है लोक कल्याण। नयी कविता का कवि कहता है।–

'' सुनो कवि भावनाएँ नहीं है सोता
भावनाएँ खाद है केवल
जरा उनको दबा कर रखो ,
जरा सा और पकने दो
ताने और तनने दो
अंधेरी तहो के पुट में पिघलने और पचने दो
रिसने और रचने दो
कि उनका सार बनकर चेतना की धरा को–
कुछ उर्वरा कर दो
भावनाएँ तभी फलती हैं कि उनसे लोक के कल्याण का
अंकुर कही फूटे।। '' 16

स्पष्ट है नयी कविता प्रचालित समाज व्यवस्था, प्राचीन रूढ़ मूल्यों एंव आदर्शो का विरोध करती है तथा एक ऐसी समाज व्यवस्था में आस्था व्यक्त करती है जो समता पर टीकी हो अर्थात सबको समान अधिकार प्राप्त हो।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नयी कविता में पुराने मूल्यों को स्वीकार करके जिन नये मूल्यों की स्थापना की उनमें प्रमुख है– मानव की स्वतंत्रता, मानव के प्रति आस्था और विश्वास एंव सामाजिकता तथा मानव अस्मिता की खोज ।
नयी कविता तो मानव अस्मिता के खोज की कविता है इसमें नये जीवन मूल्यों को स्वीकृति मिली है, रूढ़ एंव जड़ मूल्यों के प्रति असन्तोष तथा विद्रोह का भाव व्यक्त हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1– गर्म हवाये– सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (पृष्ट सं0 52)
2– ओ अप्रस्तुत मन– भारत भूषण अग्रवाल (पृष्ट 102)
3– इन्द्रघनुष रौदे हुए– अज्ञेय
4– डूबेगा चांद कब डूबेगा– मुक्तिबोध
5 –तालाब की मछलियाँ– नागार्जुन (पृष्ट 157–158)
6–तारसप्तक–अज्ञेय (पृष्ट –25)

7–चाँद का मुँह टेढ़ा है– मुक्तिबोध
8–तारसप्तक– अज्ञेय (पृ0 275)
9–चांद का मुँह टेढ़ा है– मुक्तिबोध (पृ0 275)
10– संसद से सड़क तक– धूमिल
11– '' '' '' (पृ0 105–106)
12–तारसप्तक–अज्ञेय (पृ0 112)
13– इन्द्रधनुष रौंदे हुये– अज्ञेय (पृ0 59)
14–पहले मैं सन्नाटा बुनता था– अज्ञेय (पृ0 30)
15– आत्मजयी– कुँवर नारायण
16–पूर्वा–अज्ञेय (पृ0 229–230)

Folk Festival and Environment Conservation

Dr. Raju Kumar Singh
Assistant Professor , Dept. of Sociology
ANM PG College Ballia

Abstract :-
There is a very strong intimacy between folklore and culture. So culture often provide the lens through which the perception of the natural world is understood and acted upon. Two case study of folk festivals has been taken for reflection on how the natural world is perceived, articulated and framed through cultural and religious knowledge in Haridwar in North India which is based on conservations with Kumaoni women and Garhwali men conducted.
Keywords:- Hindu festival ; Folk festival; ritual; practices; environment conservation; india.

Phool-Dei festival

Phool Devi is one of the most courteous harvest festivals celebrated by people of Uttarakhand. The Phool Dei festival has relation with nature and people pray for rise in agricultural output and general wellbeing of their dear ones.

I asked about Phool Dei festival to Seema Bhatt, 50 year old lady. She narrated :

> Phool Dei festival is celebrated on the first day of solar month every year. Young people especially girls, take bath in the morning. Worship village diety and apply vermillion marks on their forehead and chant :
>
> **Phuldei, Chhamma dei**
>
> **Deno Dwar, Bhar Bhakar'**
>
> **Yeh Deli Sa Barampbar Namaskar**
>
> **Phoole Dwar... Phoodei, Chamma Dei**
>
> Besides decorating entrance of every house in village for good ion coming year.
>
> The children and girls get gift in the forms of rice, Jaggery and money, which they use to make 'saya' a dish made of rice flour, curd, and jiggery, it is consumed by them later.

I also observed this festival

The festival is celebrated in the Kumao region to mark the beginning of the spring season, The girls put forward their good wishes for the prosperity of the household and are given blessing and presents like sweets, fresh jagery and money in return.

The festive occasion derives its name from the word 'Dei' which refers to ceremonial pudding. During this festival, people of village sing, dance and make merry to celebrate the harvest and to pray for the well being of their relatives. It is one of the times when everyone exchanges wishes of prosperity. Folk singers sing chaiti and are given rice and other gifts as appreciation. This festival of flowers is unique to the hill state and has a dimension of colours and love.

Phool Dei is a festival that show cases the inner bonding between the communities who all are residing in the hills. During the festivity, the young girls pluck the first flowers of the season. They donot only scatter these flowers in front on their own doorsteps but also at the doorsteps of the other villagers. It is believe that these flowers are the indications of good lucks. This is the best part of the festival. Folk singer of the village welcome the spring with their musical tunes. T he Drummers, knows as bajgi, auli and Dholi visit different village courtyards and sing these mellow and soothing songs. Phool Dei is one of the most courteous harvest festivals celebrated by people of the state.

The Phool-Dei festival has relation with nature and people play for rise in agricultural output and general well being of their dear ones. Doorsteps are decorated with flowers to spread the positive massage of the phool-dei festival.

This folk harvest festival celebrated prosperity and well being and people pray for peace and joy. The purity of the celebration brings happiness to all and an atmosphere of caln and rejoicing prevails all around.

Harela Festival

The festival of Harela informs us for beginning of the new season in Uttarakhand. There is three seasons in Uttarakhand-Winter (December to March), summer (April to July) and rainy season (July to September). This festival is celebrated in according to Hindi solar calendar. Winter begins with the month of Hindi calendar of Ashwin (December), so the festival of Harela is celebrated in tenth day of the month of Ashwin. Sumeer begins with the month oif Hindi calendar of chaitra (April), so Harela is celebrated

in ninth day of chaitra. In same way, Rainy season begins with the month of Hindi calender Srawan (July)/ So Harela is celebrated in the first day of Srawan Month.

The mythology behind the festivals as Mohini, 40 years old woman local resident, narrated that is celebrated as the wedding of lord Shiva and Goddess parvati in months of Sravan. The people make the clay statues of Lord Shiva and goddess parvati known as Dikare or Dikar, colored with natural paints and worshiped them. Harela is symbolized for the new harvest of the rainy season. Harela which literally suggests 'green leaves' is also referred to greenery, especially during the monsoon season when the rice pads are filled with Shiny green leaves. This festival is celebrated for marking the beginning of the sowing cycle of crop. During this festival, the farmers pray for yielding a good harvest and thelocals enrapture in the festivity. People meet their relatives and much the seeds of plant after heating them.

The Harela festival is celebrated with utmost gaiety by the agriculture based communities. Just 10 days before the big celebration, Seeds of five or seven different types of grains including maize, mustard, horse gram, barley, wheat, rice, soy and other crops are mixes and sown in a pot or a flat wooden pane called 'chank'. This pot is then kept inside a dark room where the sunlight doesn' t enters and water is sprinkled on it twice or thrice a day. On the tenth day i.e, on the day of Harela, it is harvested. These harvested leaves are worshipped in the feet of God. During this festival 'Dikare' or 'Dikars', I observed The beautifully sculpted idols of lord shiva and Parvati are prepare by clay and painted by natural color for worshipping. After puja and other religious ceremonies, Harela or the green shoots are then placed behind the ears of each and every family member.

I also observed that People also greet their distant relatives by sending ;letters having Harela wrapped it. After puja, they usher blessings on their lovely children by chanting.

"Jeeraye Jagi raye, Dharti Jas aagav,

Aakas Jas chakav hai jaye,surya jas taran,

Syave Jasi buddhi ho, doob jas faliye,

Sil pisi bhat khaye, janthi teki jhad jaye".

Which means – you may get greenery, may you live long and gain consciousness. Have patience like earth, be as kind as the sky up above, be as radiant as the sun, be as witty as the jackal and grow like the grass. May you live until the time, when you'll have to grind the cooked rice to eat it and use a stick to go to bathroom.

Harela festival is celebrated to check the future harvest of the crop and the germination of peace and prosperity in the family. It is believed the bigger the Harela will be, the more profit it will reap. Also, I have observed that some people sow the seeds of different plants on the day and pledge to save the environment. As Gokhula, 45 years old local resident of Haridwar, narrated that It is believed that if a branch of any tree is planted on the auspicious day of Harela, after five days it will develop roots and the tree will remain immortal forever. Traditionally, the Harella is planted at home but in some villages, it is planted inside the temples and is offered to the local diety. If a person expires on Harela then the seeds are not sown until a child or a calf takes birth on the same date.

Conclusion

The effectiveness of any religion in protecting the environment depends upon how much faith its believers have in its precepts and injunctions. It also depends upon how those precepts are transmitted and adopted in every-day social interactions. In the case of Hindu religion, which is practiced as Dharma- way of life may of its precepts became ingrained in the daily life and social institutions of the people. Examples of two folk tradition of people of Haridwar like phooldei festival and Harela festivals related ritual practices such as the celebrating the arrival of spring with flowers and reflection of the various colours of spring season, plantation for bringing happiness, peace, prosperity in the family. Sowing the seeds of different plants and pledge to save the environment, rituals related 'dikar' and social cohesiveness, etc. shows to the theory of embedded ecologies emerges through an exploration of Subtle and complex relationship between cultural and natural worlds.

References :-

Sashital, Meera. S. (1926). Water the essence of life. Mirror, vol. XXV, No. 8, March 1926 (Bombay), p.22

Morgan, K.W. (1943). The Religion of Hindus, Newyork, p. 102

Toynbee, Aronald J. (1966). Change & Habit – London, p. 171

Ferguson, James (1873). Tree & Serpent worship, Quoted by Dwivedi & Tiwari, Op. Cit. pp. 57-8

Godstucker, Theodore (1955) Sanskrit & Culture, Culcutta, p. 29

O.P. Dwivedi, B.N. Tiwari, (1987). Environmental Crisis and Hindu Religion. New Delhi : Gitanjali Publication

Taylor, A. (1948). Folklore and the student of literature, the pacific sepctor, vol. 2, 216-223.

Islam, Mazhrul. (1985). Folklore : The pulse of the people of India. New Delhi : Concept publication.

Jackson, Timothy. (2009). Deep Ecology in Action : A cross cultural series of case studies on the conservation efforts of Monks and Religious leaders in India, Mangolia and Thailand. Thesis, University of Pitsberg.

Gosling, David. L. (2001). Religion and Ecology in India and Southeast Asia. London : Routledge.

Parivrajak, Swami BV. (1999). Where is 'that Vrindavan? (15 Jan. 1999) in VINA (Vaisnava Internet News Agency) at <http://www.vina.org/article/where_is_that_vindavan.html>

Narayan, Vasudha. (2001). Water, wood and Wisdom : Ecological perspectives from the Hindu Traditions. Daedalus, 130(14) : 179-206.

Mishra, Shalini. (2007). Spirituality, culture and the politics of Environmentalism in India. Journal of Entrepreneurship, 16(2), 131-145. Sage Publication.

Basu, P. & Silliman, J. (2000). Green and Red, Not Saffron : Gender and the politics of resistance in the Narmada Velley. In C.K. Chapple and M.E. Tucker (eds.), Hinduism and Ecology : The intersection of Earth, sky and water. Pp. 423-52. Cambridge. MA : Harvard University Press.

Baviskar, A. (1995). In the Belly of the River : Tribal conflicts over Development in the Narmada Valley. New Delhi : Oxford University Press.

Chapple, C.K. (1998). Towards an indigenous Indian Environmentalism. In L.E. Nelson (Ed.). Purifying the earthly body of God. pp. 13-38. Albany : State University of New York.

Deegan, C. (2000). The Narmada : circumambience of a sacred landscape. In C.K. Chapple and M.E. Tucker (eds) Hinduism and Ecology : The intersection of Earth, Sky and Water. Pp 389-400. Cambridge, M.A. : Harvard University Press.

Fisher, W.F. (2000). Sacred Rivers, Sacred Rams : Competing vision of social justice and sustainable development along the Narmada. In C.K. Chapple and M.E. Tucher (eds.), Hinduism and Ecology : The Intersection of Earth, Sky and water. Pp. 410-23. Cambridge, M.A. : Harvard University Press.

Gosling, D.L. (2001). Religion and Ecology in India and Southeast Asia. London : Routledge.

Hindu Pilgrimage Place and Environment

(A case study of Haridwar, Uttarakhand)

Dr. Raju Kumar Singh
Assistant Professor , Dept. of Sociology
ANM PG College Ballia

Abstract:-

Pilgrimage (tīrthayātrā) and pilgrimage places (tirth, Kestra) are some of the most visible aspect of Hinduism. Pilgrimage takes place in pulic and often involves a large number of people. Many of the places of pilgrimage are sacred complexes with monumental temples, numerious shrines and scores of ritual performers. Sacred centre such as Haridwar in Uttarakhand has grown into huge cities but are still objects of pilgrimage travel. At the pilgrimage places, annual festivals attract a large number of people, and some of these festivals constitute the largest gathering of people on earth for a single purpose. So in this context the paper investigates how Hindu pilgrimage places are polluted by hindu rituals performed by Hindu pilgrims.

Keywords :- Hindu ; Pilgrimage ; Tirthas ; Environmental pollutions ; India.

Case Study : Hindu Pilgrimage place and environment

Pilgrimage (tīrthayātrā) and pilgrimage places (tirth, Kestra) are some of the most visible aspect of Hinduism. Pilgrimage takes place in pulic and often involves a large number of people. Many of the places of pilgrimage are sacred complexes with monumental temples, numerous shrines and scores of ritual performers. Several pilgrimage sites are places of natural beauty, situated in striking natural surroundings in or on mountains, next to rivers lakes or waterfalls and many of the most beautiful Hindu temples are found at pilgrimage places. Most Hindu pilgrimage sites has temples and sacred structures, but the natural surroundings are nevertheless important parts of pilgrimage place. The ground itself, the ksetra, is sacred, regardless of any temples built there. In many foundation stories of pilgrimage places, the site itself reveals its sacredness to persons. Sacredness is inherent in the site (Jackson : 2013). Sacred centre such as Haridwar in Uttarakhand has grown into huge cities but are still objects of pilgrimage travel. At the pilgrimage places, annual festivals attract a large number of people, and some of these Festivals constitute the largest gathering of people on earth for a single purpose. The Kumbhmelā festivals, of which the largest assembles are those in Haridwar every twelth year (or actually every 11.86 years, as the festival is regulated by the movement of the planet Jupiter around the sun, so sometimes there are only 11 years between two Haridwar Kumbhmelās), attract tens of millions of people during the approximately five weeks it takes place and on the main bathing days of the 2016 Haridwar Artdhkumbhmelā, perhaps millions people were present. Also, many other pilgrimage festivals attract large crowds, and new and faster

methods of transportation over the last century and a half have greatly increases the number of pilgrims.

Many of the most famous Hindu temples are there found at the pilgrimage places, some were built on established pilgrimage places, other developed into pilgrimage places after they were built. These temples are frequented not only by the local population, but also by people from the larger locality and the region, and even by visitors from outside the region. Pilgrims travel to most pilgrimage places individually or in smaller groups, or, as has become popular over the last decades, in buses organized by travel agents spepcializing in pilgrimage tourism for that purpose.

The most significant places of pilgrimage are associated with important sacred narratives of god and goddesses. The enormous number of pilgrimage sites in Hinduism reflects the large number of gods, goddesses, gurus and saints, traditions and organizations, and the fact that the sacred narratives about the activities of gods and goddesses took place on earth thus creating innumerable sacred sites. In addition, pilgrimage places are associated with sacred narratives about ascetics, gurus and saints, such as descriptions of ascetics stopping at certain places to perform ascetic exercises (tapas) and therefore endowing the places with salvic or salvation power, and with the narratives and samādhisthānas of the holy figures Monastries have often been established at pilgrimage sites, and the presence of ascetics is part of the sacredness of the place and an important element of pilgrimage places. They arrive at festivals in great numbers – one reason being the easy availability of food and alms. Other significant religious factors in generating the large number of pilgrimage places are : the importance of the last stage of life the Samnyāsa āsrama, in which an ascetic life of wondering from place to place is defined as the proper way to live, the fact that the institution of pilgrimage has provided a livelihood for a great number of pilgrimage priests and other involved in the pilgrimage trade; the vitality and proliferation of the textual genere of the purānas; the view of the Hindu tradition that the divine is present in the world in a number of different ways, also as arcāvatāra, the descent (avtāra) of god in a statue worshipped by devotees, and the idea of the world as no different from the divine. The traditions of sacred geography and the rituals of pilgrimage together constitute such a central dimension of Hinduism that is perhaps not an overstatement to say that, for a large majority of Hindus, their religious practice is more oriented around sacred space than around scared books and that the ritual of pilgrimage and visit to temples is of more relevance in their religious life than rituals involving books. For many Hindus, visit to sacred landscapes and places, including their temples, rituals and pilgrimage festivals are probably considered high points of their religious life. The pilgrimage temples are often the most important of Hindu temples, and the pilgrimage festivals the most important and extravagant festivals. The gods, goddesses and sacred figures of Hinduism are connected to sacred sites and, to many Hindus, thinking of these sites and hearing narratives about them is an important dimension of

their religious life. Traveling to them represents some of the most significant events of religious life. The Hindu textual tradition is full of praise of the sacred sites. For a lot of Hindus, sacred geography, pilgrimage places and the ritual of pilgrimage confirm the truth of sacred narratives and doctrines. The sacred geography proves that the gods. Goddesses and sages were present on earth; the sacred sites where the activities of the divinities were supported to have taken place verify the truth of the sacred narratives.

There is, in Hinduism, a very close relationship between sites, divinites and sacred persons, and salvic attainments, Divinities have manifested themselves at particular sites, where their power continues to be accessible. Sites are associated with particular powerful manifestations of individual divinities. At many of these places, the divinities and the site have blended to such a degree that the manifestation of the divinities at the particular sites become individualizes, with unique iconography, mythology and rituals. Haridwar has been a revered centre for pilgrimage ever since time immemorial, when it was known as Mayapuri, as has also been mentioned by the Chinese traveler Huin Tsang in this memories. It is also said that Haridwar has been sanctified by the presence of three Gods (Trinity) of Hinduism, i.e. lord Brahma, Vishnu and Mahesh. Devout believers feel that they can go to heaven by getting their salvation after a dip in the sacred Ganga at Haridwar. During such occasions heavy influx of visitors changes the population structure of city for many weeks. This in turn creates problems of Shelter, food and transport etc. and for satisfying their needs, many changes are taking place regularly in the natural, social, economic and cultural environment. As a result of this, Haridwar and its environments which were once covered with beautiful lush green forests, have now become changed to merely a cultural entity.

Mansa Devi and Chandi Devi hillock are among the most sacred temples, visited by at least around 10,000-15,000 persons on any ordinary normal day. The number of visitors to these two temples rises between 40,000 to 50,000 on any single festive days of the year. The pilgrims visiting the temples during these normal and festive days causes a lot of problems in the concerned areas, because they carry different types of offering to the dieties like coconuts, specific dresses, sweets and millets etc. All these types of offering to the deities are taken mostly in polythene bags and various types of bamboo baskets and after offering to the deities these offerings and carry bags etc, are left at the temple sites, where these items are rarely collected for proper scientific disposal. A lot of left over material is generally swept to the valleys, dumped in the Ganga, and often burned, when heaped in large amounts; Kausik and Joshi (2010) studies the impact if pilgrimage on the various environmental components of Mansa Devi hillock and suggested some remedial measures to soil erosion/land slides in the concerned area.

Gangwar and Joshi (2008) studies the quantity of solid waste during the Aradha Kumbha period of 2004. They reported that 62.20% bio-degradable, 17.14% Non-biodegradable and 13.61% miscellaneous during the different festivals of Ardhkumbha.

Kaur and Joshi (2002) reported that Haridwar city proper generated 1873.7 kg organic matter during any normal non festive day. Sharma, et. al, (2010) surveyed different types of colonies in Haridwar city and observed that the financially better – off localities generate roughly twice as much garbage as people from slum areas. These data give us a vivid status of solid waste generation for this holy city, during different occasions.

However the improper fate of solid wastes and mismanagement of sanity system create disease supportive environment after the period of festive occasions as reported by Saini et. Al, (2009) in case of Kanwar festival in Haridwar city. Dhere et, al (2008) studied the adverse impact of municipal solid waste on air and ground water due to the imporper disposal of waste in pure city. Waste material also impact the soil quality as pointed out by Ahel et. Al. (1998) mainly by increasing the concentration of various hazardous elements of soil through municipal solid waste.

As for the river Ganga at Haridwar, a lot of pilgrims visit to take a holy dip in the river and visit these sacred temples. But during Kumbh and Ardh Kumbh period the heavy influx of the pilgrims at Haridwar flowing to Mansa Devi, Chandi Devi, Bharat Mata Mandir and Daksha Mahadev temple etc. leads to the creation of huge amount of solid waste, besides impacting to various environmental problems like water, air, noise pollution and disease born out of these, besides many other social problems.

Tirthas are associated with purity and the ability to purify the souls of the pilgrims. They are part of social, cultural, economic and political contexts and have many functions related to all these contexts, but as 'tirthas' are also believed to be sites for the attainment of Moksha/ Mukti, pilgrimage can be means to salvic libration. Does impurity caused by environmental pollution cause Hindus to lose faith in the purifying power of tirthas-namely, stop them performing the ritual of salvic space? The view that holiness is not stained by environmental pollution because the only view doubt impurity. A second point of view that supports religiously motivated social- action to diminish the pollution is also found at sacred sites. According to this view, pollution is a serious problem, but it nevertheless does not affect the salvic power of the place and the purity of the place is considered untouched.

Conclusion

The environment does exist as an external reference point for the input of information, but our ability to secure an understanding of this reality is limited and shaped by our mind. The way people think about and understand the world is important because it determines the appropriate behaviours towards their environments. These understanding motivate their actions, which come to physically shape the environments. In a very physical way the natural environment is shaped through human interaction & accordingly, by the religio-social constructions of that environment. Devotee of Hindu practices their rituals and using symbols to shape a environment.

References-

Dhere, M.A. Chandrasekhar, B.P. Pratapsingh, B.P. & Dhanraj, A.P. (2008), Municipal solid waste disposal in Pune city – An analysis of air and ground water pollution. 95(6) : 773-777.

Garg, S.P. & Porwal, M.C. (1986). Impact of tourism on Haridwar and its environments with special reference to Kumbh 1986. Meerut : Research India publication.

Kaushik, K, S. and Joshi, B.D. (2010). A note on the pilgrimage pressure on Mansa Devi hillock of Haridwar, J. Env. Bio-Sci. 24(2) : 267-269.

Gangwar, K.K. and Joshi, B.D. (2008). A preliminary study on solid waste generation at Hark ki Pauri, Haridwar, around the Ardh-Kumbh period of sacred bathing in river Ganga in 2004. The Environmentalist. 28: 297-300.

Kaur, S. & Joshi, N. (2002). The solid waste generation during normal days in Haridwar city. Hiom J. Env. 2001. 16(2) : 267-270

Sharma, V. Saini, P. & Joshi, B.D. (2010). Assessment of Municipal solid waste generation and its management in the holy city of Haridwar. Uttarakhand state, India waste Management 30 : 725-728

Mishra, S. & Joshi, N. (2002). Generation of solid waste during festive occasion in Haridwar city. In Him. J. Env. 2001. 16(20) : 263-266.

Saini, P., Sharma, V. and Joshi, B.D. (2009). A random survey report about rise in water borne diseases. In journal of Env. Bio-Sci. 23 (2) : 215-219

Ahel, M. Mikac, et al. (1998). The impact of contamination from municipal solid waste landfull (Zagreb, Crotia) on underlying soil. In Wat. Sci. Tech. 37(8) : 203-210

Jacobsen, Knut, A. (2013). Pilgrimage in the Hindu Tradition: Salvic space, New York : Routledge.

Derret, R. (2003). Making sense of how festivals demonstrate a community's sense of place. In Event Management, 8, 49-58.

Getz, D. (1991). Festivals, special events and tourism, New York : Van Nostrand Reinhold.

Lutgendorf, P. (1994). My Hanuman is bigger than yours. In History of Religious, 33(3), 211-245.

Macelan, K.K. (2003). Power and pilgrimage : The Kumbhmela in Allahabad, 1765-1954. Unpublished Ph.D. thesis, La, Trobe University, Melbourne.

Picard, D. Robinson, M. (eds.). (2006). Festivals, tourism and social change-Remaking worlds. Clevedon, UK : Channel view publications.

Rinehart, R. (2004). Contemporary Hinduism : Ritual, Culture and practice. California : ABC – CLIO.

Shcakley, M. (2001). Managing sacred sites : Service provisions and visitor experience. London/New York : Continum.

Shinde, K.A. (2007). Pilgrimage and the environment : Challenges in a pilgrimage centre. Current issues in Tourism, 10(4). 343-365
Brahmpurana, Prayaschittatattva 2/535
Durkhiem, Emile, (1915) Elementary forms of Religious life, Tr. J.W. Swain. New York : Free Press. 1965
Geertz, Clifford, (1966). Religion as a cultural system. In M. Bantom (ed.) ; Anthropological Approaches to the study of religion. London : Tvistock.

Role of Social Media in Indian Society

Dr.Bharti Rastogi
Assistant Professor, Department of Sociology
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi

Introduction

Social media is a recent communication technology which emerged as one of the strong means of interaction and social, economic and political communication. Social media differs from traditional or mass media (newspapers, radio, television and films etc.) in respect of costs, accessibility, reach, effectiveness and interaction. Mass media channels generally involve large resources to publish or broadcast information. Social media is relatively inexpensive and accessible technique enabling people including private individuals to publish or accessinformation. The concept of social media emerged around 2004 after LinkedIn created social network application. Social media can be defined as the collective of online communication channels dedicated to community-based input, interaction, content-sharing and collaborations. Websites and applications dedicated to forums, microblogging, social networking, social bookmarking, social curation and wikis are among the different types of social media (http:whatis.techtarget.com/definition/social media). Social media is disseminated through social interaction and use internet and web-based technologies to transform broadcast media monologues (one to many) into social media dialogues(many to many).Some prominent examples of social media networking websites are : Facebook, Twitter, Google+, Wikipedia, LinkedIn, Reddit and Pinterest. Social media websites are some of the most popular haunts on the internet. They have revolutionized the way people communicate andSocialize on the web. Social media technologies enable anyone to reach a global audience and the related services are open to feedback and participation. Such revolution in communication technologies has tremendous impact on social, cultural, political and economic conditions of different regions (Singh, 2012). Like any other new medium and invention, the social media is presently at the stage of experiment and gaining experience relating to different dimensions of operation in the society (Bramhatmaj,2013). Empirical research studies on socio-economic aspects of the use of Social media channels are scarce, particularly in India. Main objective of the present paper is to analyze growth, prevalence and socio-economic effects of social media in India. It has been tried to discuss both positive and negative impact of the social media.

Growth of Social Media

Rapid growth of internet users since the beginning of the twenty-first century has been accompanied by fastly increasing use of the social media.Table:1 shows that the number of internet users in the world was about 361 million in 2000 which jumped to above 2400 million in 2012 with an increase of 566 per cent. During this period increase in the number of Internet users was 393 per cent in Europe as against 842 per cent in Asia.

Table – 1

Number of the Users of Internet in different regions of world during 2000-2012

S.No.	Area of the world	Number of the users of Internet		% increase (2000-2012)
		2000	2012	
1	Africa	4514400	167335676	3606.7
2	Asia	114304000	1076681059	841.9
3	Europe	105096093	518512109	393.4
4	Middle-East	3284800	90000455	2639.9
5	North America	108096800	273785413	153.3
6	Latin America	18068919	254915745	1310.8
7	Australia	7620480	24287919	218.7
	World (Total)	360985492	2405518376	566.4

Source :http://www.internetworldstats.com/stats.htm

In India, there were approximately 7 million internet users in 2001 which increased to 190 million in June 2014. During this period such number has grown by about 27 times with an increase of 2614.3 percent. Today, 40 million Indian are online every day, spending 40-45 hours over the internet per month. India is the second largest market for social networking giants such as facebook and LinkedIn, 58000 new users get connected on to social network every day. (Shah, Jain and Bajpai, 2015). India already has the third largest internet population in the world, after China with 620 million and the U.S. with 275 million. It is estimated that there will be over 500 million internet users in India by 2018-making India the second largest population of Internet users in the world. The growth in the Internet base in India has been exponential. It took 20 years from the introduction of the Internet to reach 100 million users. The second 100 million will likely be reached within three years, and the third in less than a year.

It is significant to find that there has been the shift in the profile of internet users. The last hundred million users will be different from the first hundred million on multiple dimensions : they will older, more rural, more female and more mobile-led. The group will shift from over 60 per cent being below 25 years of age to almost 55 per cent being 25 years of age or above, from about 30 per cent rural to over 50per cent rural, from 60 per cent mobile-led to over 80 per cent mobile-led and from nearly 28 per cent women to about 35 per cent women (Shah, Jain and Bajpai, 2015) .

In India, the number of social media users has been reported as 134 million in 2015 which has increased by 26 per cent over the past year. Mobile social media users in the country are 97 million. The number of active social media users is increasing at the rate of roughly one every second and with this rate of increase, after about 16 years half the country's population will be using social media. (Weare- social, Com/UK/special-reports/digital-social-mobile-India-2015).Although, everybody has not access to the internet and social media in Indian society, the fact that, these are spreading very fast, cannot be under-mind.

Popularity of Social Media

The Difference in the effect of various channels of social media can be understood in a better way if their relative prevalence is examined. It will be useful to take a look at the

biggest players in the social media networking and online communities. Table – 2 shows monthly visits (October, 2014) on 15 largest social networking sites. Most of the sites are global in their reach, but VK has a distinctly European focus and audience. The table shows that Facebook enjoys a huge lead over everyone else with 900 millionmonthly visits inOctober 2014 as compare to 310 million in case of Twitter and 255 million for LinkedIn. These top 15 are all very broad in terms of their appeal and these are not specialty sites or niche communities appealing to only one type of user. There is a question :why social media is becoming popular in India? The answer is :interaction, live chat, status updates, image- as well as video sharing are few of the major aspects that play a role in the popularity of social media. Politicians are also increasingly using the social media channels. Companies are using social media in India and across the globe to promote their business as discussed in the next section. Multiple roles played by social media beyond its core role of mear communicating information are leading to its popularity.

Table – 2

Fifteen largest social networking sites with monthly visits (October 2014)

S.No.	Social Networking Sites	Monthly Visits	S.No.	Social Networking Sites	Monthly Visits
1	Facebook	900,000,000	9	V.K.	65,000,000
2	Twitter	310,000,000	10	Vine	42,000,000
3	LinkedIn	255,000,000	11	Meetup	40,000,000
4	Panterest	250,000,000	12	Tagged	38,000,000
5	Google+	120,000,000	13	Ask.fm	37,000,000
6	Tumbler	110,000,000	14	Meet me	15,500,000
7	Instagram	100,000,000	15	Classmates	15,000,000
8	V.K.	80,000,000			

Source :RicShreves with Krasniak Michelle, *Social Media Optimization,* Wiley India Pvt. Ltd. Dryaganj, New Delhi, 2015

Short description in of some prominent social media, as mentioned in table – 2, may be given here. Facebook, the most dominant social media site, is a popular free social networking website that allows registered users to create profiles, upload photos, and video, sent massages and keep in touch with friends, family and colleagues. Twitter is a free micro-blogging service that allows registered members to broadcast short posts called tweets. Twitter member can broadcast tweets and follow other users' tweets by using multiple platforms and devices. LinkedIn is social networking site designed specifically for the business community. The goal of the site is to allow registered members to establish and document networks of people they know and trust professionally. Pinterest is a social curation website for sharing and categorizing images found online. Pinterest requires brief description but the main focus of the site is visual. Clicking on an image will take a person to the original source. For example, if someone clicks on a picture of a pair of shoes, the person might be taken to a site where he can purchase them. Google+ is Google's social networking project, designed to replicate the way people interact offline more closely than is the case in other social networking services. The project's slogan is "Real-Life sharing re-thought for the web."

Socio-Economic Effects

Social media has wide role to play is changing the mindset and life style of a common man in a developing country like India. A developing country is generally in a state of instability with respect to the changes in the life style, culture and civilization and people get very easily influenced by the attitudes, perceptions and socio-economic practices prevailing in other regions and societies. Indian people Interact through social media with people of other cultures and civilizations. As a result of this, scientific and rational thinking is developing among people, particularly, in urban areas. Traditional values and superstitions in respect of health, diseases, food, fertility, family planning and maternal and child care etc. are changing with the adoption scientific and modern practices. The increasing communication and interaction through social media has been modernizing the attitudes and behavior of the people and the challenge before the Indian society is to bridge the gap between 'tradition and modernity'.

Social networking technology encourages increased openness and honesty about personal issues – feelings, concerns and vulnerabilities – that adolescents can otherwise feel awkward discussing.Such 'hyper-personal' internet talk, the psychologists found, stimulates deeper friendships that help youngsters cope with the stress of teenage life and results in happier individuals (Pandey, 2016). The social media is also helping to reduce tensions and worries and retain the family bond, making it more affectionate. This is made possible through communication and interactions of a family with other members living far away in the country or abroad. The family can get in touch with their children studying or working abroad. The grand parents can have, through the social media, regular glimpse of their grand children and can interact, visualize and perceive their growth.

Indian people interact through the social media with people of other cultures which fascinates them. Being influenced by western culture, Indians are trying to imitate them which results in fading of their own culture. Increasing use of social media in the country is one of the important factors for weakening of the caste system. It is certainly true that the restrictions of marriage, diet, mode of life, behavior and so on based on caste are breaking down. The rapid growth of social media and the process of globalization has influenced the primary institutions in India such as family, marriage and kinship to a great extent. Jointfamily system which was prominent in the socialization and providing social security and care in old age, has undergone immense change. The selection of mates is being increasingly done by the uses of technology (matrimonial websites). The marriage, family and kinship are in the phase of transitions with fastly rising communication and use of social media.

Researchers and scientists can exchange their views and findings through the use of social media. Students can collaborate with their peers to improve their academic proficiency and communication skills. Using social networking sites boosted creativity and exposed students to new and diverse world views. Social networking activity taught students how to edit contents and to think about design and encouraged the production and sharing of poetry, art, photographs and video content. These students also tended to do better in examinations (Pandey, 2016).

Social media has become an integral part of recruiting firms. These firms are using Facebook,LinkedIn and Twitter to find new employees and skills. So, gone are the days when

for employment recruiters as well as employees used to rely on classified ads and employment exchange in the newspaper. Hiring through traditional media was based on gut feeling whereas through social media, it is based on communication, interaction and direct response. Most of the organizations have well planned strategies for talent acquisition through social media.

Social media has also influenced political activities in many countries. Social websites have played an important role in the elections of different countries around the world, including U.S., Iran and India. They have also served to rally people for a cause, and have inspired mass movements and political unrests in many countries. It can be mentioned here that in the movement led by Anna Hazare, large member of people gathered and participated in 'Ram Lila Maidan' of New Delhi through the communication by social media without any other publicity (Jha, 2013).

Social media has helped in promoting efficiency and quickness in official work of different departments. Now, work in the banks, post-offices other government or private departments and educational institutions etc. is performed more promptly and quickly through the help of computers and internet. Here, an example can be quoted from the news paper (The Times of India, May 28, 2016) : "Communication minister has taken to Facebook and Twitter in a big way to speed up postal services notorious till some years ago for their snail paced delivery. He and his IT team took into grievances of customers and take immediate steps to get the post or parcel delivered to the recipients. A young man studying in Delhi had applied for the Bihar civil services examination. When he did not get an acknowledgement of his application, he inquired from the post office which informed him that the application had wrongly been delivered to Lucknow University instead of Bihar Public Service Commission in Patna. He sent a tweet to the minister's handle with just 48 hours to go for the dead line for submission of application forms. Officers in post office at Patna were alerted about the urgency. The form was delivered to B.P.S.C. hours before the dead line".

Social media has significant economic impact through the promotion of business. In business, social media is used to market products, promote brands, connect to current customers and foster new business. Companies generally use social media to advertise their products and build customer loyalty. Interaction and feedback from customers help business to understand the market, and finetune their products and strategies. Many firms organize contests and give away prize to enthuse consumers to visit their social website page more often. Compared to television advertisements and other expensive forms of marketing, social media presence is a cheap and effective means to enhance brand image and popularity. Social media marketing (SMM) takes advantage of social networking to help a company increase brand exposure and broaden customer reach. One of the key components of SMM is social media optimization (SMO) which is a strategy for drawing new and unique visitors and promoting the business (Shreves with Krasniak, 2015).

Negative Effects

Social networking technology has various negative consequences, particularly on young boys and girls who devote longer time on the social media. According to 2007 pew internet research report, over half (55%) of teens were using online social networking sites. Presently, large proportion of adolescents and youths in India, mainly in families belonging to middle and higher income groups, spend long period of time on social networks and mobile

phones for chatting and interaction with old and new friends. The young people of the modern times give greater importance to their friends with whom they devote more time on social media than their family members. The primary relations with their parents and other family members are loosing importance (Chandra, 2015). Excessive social networking by students reduces their interest in studies. Further, excessive computer use can quickly lead to a dysfunctional lifestyle where other important daily activities such as exercise, maintaining healthy sleeping and eating habits and spending time with family, relatives and friends are almost completely ignored (Pandey, 2016).

Cyber crimes committed through internet and social sites are becoming serious problems. Cyber crime generally involves criminal activities such as theft, fraud, forgery, defamation and mischief etc. Under cyber crimes, a computer is used to attack other computers, for example, hacking, virus or worm attacks. Computer is also used as a weapon – using a computer to commit real world crimes such as cyber terrorism, intellectual property rights (IPR) violations, credit card frauds, Electronic Funds Transfer (EFT) and pornography etc. Cyber crimes are regulated by cyber laws or internet laws. Unscrupulous people can target those who are not careful for cyber bullying and harassment on social sites. School children, young girls and women can fall prey to online attacks which can create tension and distress.

Conclusion

The concept of social media emerged around 2004 after LinkedIn created social network application. Social media websites are some of the most popular haunts on the internet.Rapid growth of internet users since the binging of 21st century has been accompanied by fastly increasing use of social media in the whole world as well as in India. The analysis shows that among various channels of social media, Facebook enjoys a huge lead over others.

Indian people interact through social media with people of other cultures and civilizations. As a result of this, scientific and rational thinking is developing among people, particularly in urban areas. The faith in traditional values and superstitious practices is fading. Marriage, family and kinship are in the phase of transition. Using social networking sites boosted creativity and exposed students to new and diverse world views. Researchers and scientists can collaborate with each other around the world. Social websites have played an important role in political activities and elections. Further, above analysis shows that social media has helped in promoting efficiency and quickness in official work of different departments. Social media has significant economic impact through promotion of the business activities. Companies generally use social media to advertise their products and build customer loyalty.

Social media through social networking proved to be a boon for the society with large number of advantages, but its disadvantages cannot be undermined. Large proportion of adolescents and youths in India spend long period of time on social networks or mobile phones for chatting and interaction with old and new friends. This reduces interest of the students in their studies. Due to excessive use of social media, important daily activities such as exercise, healthy sleeping, eating habits and spending time with family, relatives and friends are almost completely ignored. Cyber crimes committed through internet and social sites are becoming serious problems. Unscrupulous people can target those who are not careful for cyber bullying and harassment in social sites. To utilize the advantages of social

networking sites, the social media should basically be used for creative and productive activities leading to educational, professional and business advancement and maintaining healthy social relationships. People should be educated about cyber laws and internet laws,so that they may take appropriate legal action against the cyber crimes.

References

Bramhatmaj Ajay, 2013, "BahuupyogiSamvadMadhyamHai Social Media", *Yojana* (in Hindi), 58:5, May.

Chandra, Vinod, 2015, "Bhartiya Digital YuvaPirhi :SamajikVyoharKe Naveen Pratiman" *Manav*, No. 1, 2, Ethnographic and Folk Culture Society, 1, Shahmina Road, Lucknow.

Jha, Sushil Kumar, 2013, "Patrakarita Men Social Media kaYogdan", *Yojana* (in Hindi) No. 5, May.

Pandey, Vinita, 2016, "*Indian Society and culture*, Rawat Publications, Sector 3 Jawahar Nagar, Jaipur.

Shah Alpesh, Jain Nimisha and BajpaiShweta, 2015, *India @ Digital Bharat Bostan Consulting group (BCG) and Internet and Mobile Association of India*, creating A $2000 billion Internet Economy , January, 2015.

Singh Yogendra, 2012, *Culture change in India : Identity and Globalization*, Rawat Publications, Sector – 3, Jawahar Nagar, Jaipur.

ShrevesRic, with Krasniak Michelle, *Social Media Optimization*, Wiley India Pvt. Ltd. Daryaganj,New Delhi.

The Times of India, May 28, 2016, "Government takes to Social Media to Hasten Postal Services", Varanasi.

wearesocial.com/U.K./specialreports/digitalsocial-mobile-india-2015.

www.http://whatis.techtarget.com/definition/social-media

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

शिक्षा का व्यावसायीकरण : एक सामाजिक बदलाव

डॉ. शिवम श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, किसान पी0जी0 कॉलेज बहराइच उ0प्र0

डॉ. अर्चना निगम
सहायक प्रोफेसर, किसान पी0जी0 कॉलेज बहराइच उ0प्र0

सार संक्षेप

शिक्षा का व्यावसायीकरण व बाजारीकरण हो जाने से शिक्षा की गुणवत्ता में कमी आई है। शिक्षा का स्तर गिरता चला जा रहा है शिक्षा के मूल्यों का ह्रास हो रहा है, शिक्षा के व्यावसायीकरण से समाज में असंतोष बढ़ रहा है समाज में अनेक विसंगतियां उत्पन्न हो रही हैं। शिक्षा का व्यावसायीकरण की समस्या को रोकने में सरकार पूरी तरह असफल नजर आ रही है या तो सरकार द्वारा बनाई गई नीतियां सफल नहीं हो पा रही हैं या उसका प्रशासन द्वारा सही ढंग से क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है । सरकार को इस समस्या के निवारण के लिए भगीरथ प्रयास करना होगा सरकार को ऐसे कालेजों को मान्यता रद्द कर देनी चाहिए जो निर्धारित मानक पर आधारित नहीं है और पैसों पर डिग्रियां बांट रहे है। सरकार को जनता में जागरूकता फैलानी चाहिए शिक्षा की उपयोगिता और महत्व को बताया जाए संचार माध्यमों से जनमानस को जागरूक किया जाए।

यह सच ही कहा गया है कि जिस प्रकार पौधों का विकास जुताई से होता है, उसी प्रकार मनुष्य का विकास शिक्षा के द्वारा होता है शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक उद्देश्यपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके कला कौशल में अभिवृद्धि तथा उसके व्यवहार में परिवर्तन करके सभ्य एवं सुसंस्कृत नागरिक बनाया जाता है। एक सभ्य एवं सुसंस्कृत मनुष्य ही समाज एवं अपना स्वयं का पथ प्रदर्शन कर सकता है शिक्षा रूपी प्रकाश पुंज से बालक की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक योग्यता का विकास होता है जिससे मनुष्य के विचारों में परिपक्वता एवं उत्कृष्टता का समावेश होता है। **प्रोफेसर एस.सी. दुबे कहते है "उच्च शिक्षा को प्राप्त करने का कहीं कोई अधिकार नहीं है यह तो एक सुविधा है जिसका अर्जन करना चाहिए और अर्जन के लिए निष्पत्ति अहर्ताओं की भली प्रकार से पूर्ति करनी चाहिए [1]" ।**

शिक्षा के द्वारा ही मानव की जन्मजात शक्तियों प्रवृत्तियों का शोधन किया जाता है जिससे उनमें सकारात्मक प्रवृत्तियों का समावेश किया जा सकता है और मनुष्य एक विशिष्ट गुणों से युक्त सामाजिक प्राणी के रूप में अपनी भूमिका को सुनिश्चित कर सके। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच सका है। [2] जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से सूरजमुखी पुष्प खिल जाता है उसी प्रकाश शिक्षा के प्रकाश से मनुष्य के व्यक्तित्व में सकारात्मकता का समावेश हो जाता है पाश्चात्य विचारक फ्रोबेल कहते हैं कि शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियॉ को प्रभावी रूप में प्रकट होती हैं। शिक्षा का उद्देश्य प्रारंभ से ही मनुष्य में ऐसे संस्कारों का समावेश करना था जिसके द्वारा वह समाज में एक श्रेष्ठ एवं योग्य नागरिक के रूप में अपनी भूमिकाओं को सुनिश्चित कर सकें एक शिक्षित व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है थी कि उसका कार्य व्यवहार सकारात्मक गुणों से युक्त होगा जिससे वह समाज का पथ प्रदर्शन कर सकेगा। शिक्षा के महत्वपूर्ण घटकों में सकारात्मक तत्वों का समावेश होता था । शिक्षा के उद्देश्य को प्रकट करते हुए

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ एपीजे अब्दुल कलाम ने कहा है कि " शिक्षा का उद्देश्य चरित्र और मानवीय मूल्यों का विकास करना तकनीकी द्वारा सीखने की सामर्थ्य को बढ़ाना और बच्चों को भविष्य में सामना करने के लिए उनमें आत्मविश्वास का निर्माण करना है।"

शिक्षा के व्यावसायीकरण से तात्पर्य शिक्षा के उन सुनिश्चित कार्यक्रमों से है जिनका उद्देश्य लाभ कमाना होता है समाज कल्याण करना नहीं । व्यवसाय में उचित, अनुचित, व्यावहारिक, अव्यावहारिक सामाजिक गुणों राष्ट्र की एकता और आवश्यकता पर ध्यान न देकर केवल लाभ को अधिकतम करने का प्रयास किया जाता है। यहां नैतिकता का कोई विशेष महत्व नहीं होता व्यावसायीकरण में नैतिकता की कल्पना बहुत उचित नहीं है, क्योंकि नैतिकता सामंजस्य पूर्ण जीवन बिताने का प्रयत्न है। इसे स्थिर शक्ति कहने की अपेक्षा गतिशील शक्ति कहना कहीं अधिक ठीक होगा। [3]

इस प्रकार शिक्षा का व्यावसायीकरण वर्तमान भारतीय समाज की एक गंभीर तथा ज्वलंत समस्या है। वर्तमान समय की शिक्षा व्यवस्था पर विचार करें तो हम पाते हैं कि शिक्षा देना एक व्यवसायिक प्रक्रिया हो गई है जिसका उद्देश्य ऐन–केन प्रकारेण अधिकाधिक धनार्जन करना है। स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय आदर्श नागरिक के निर्माण की कार्यशाला न बनकर डिग्री बांटने के केंद्र बन गए हैं। जहां पर डिग्री या डिप्लोमा पैसे पर बांटा जा रहा है जैसे– B.Ed. , M.Ed. , I.T.I. और Diploma डिग्रियां आसानी से पैसों पर मिल जा रही हैं। शिक्षा का पूरी तरह से बाजारीकरण हो गया है शिक्षा बाजारों में बिक रही है, अतः शिक्षा लाभ कमाने का एक साधन बन गई है। वर्तमान समय में अनेक प्रकार की निजी शिक्षण संस्थान खुल रही है जो शिक्षा के व्यावसायीकरण को बढ़ावा दे रही हैं।

शिक्षा का बाजारीकरण हर क्षेत्रों में हो रहा है चाहे चिकित्सा का क्षेत्र हो या तकनीकी का क्षेत्र शिक्षा के व्यवसाय में एक बार पैसे लगाने पर हमेशा लाभ ही लाभ होता है जिससे लोग इतने ज्यादा रुचि लेते हैं । शिक्षा के व्यावसायीकरण के प्रसार में शिक्षक, शिक्षण संस्थाए, समाज के उच्च शिक्षा माफिया तथा अशिक्षित लोग लगे हैं । शिक्षक स्कूल कॉलेज महाविद्यालय में शिक्षा की उपेक्षा कर अपने निजी कोचिंग संस्थान को ज्यादा महत्व दे रहे हैं क्योंकि उनका कोचिंग संस्थान एक व्यवसाय बन गया है इसलिए शिक्षक अपना ज्यादा समय विश्वविद्यालय या विद्यालय में ना देकर अपनी कोचिंग संस्थाओं में देते हैं और बच्चों को कोचिंग में पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं इस कारण भी शिक्षा का व्यावसायीकरण बढ़ रहा है ।

शिक्षा का व्यावसायीकरण सामाजिक गुणों के विकास तथा राष्ट्र के विकास के लिए अभिशाप है इससे व्यक्ति के अंदर सामाजिक गुणों तथा दायित्वों का विकास नहीं हो पाता है। जिससे व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है। शिक्षा के व्यावसायीकरण से समाज में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। जनसाधारण के लिए शिक्षा प्राप्त करना मुश्किल कार्य हो गया है। इससे समाज में दो वर्ग का विकास हो रहा है व्यावसायीकरण से एक कुछ अलग प्रकार की संस्कृति का जन्म हो रहा है, क्योंकि संस्कृति समाज की देन है । समाज का अस्तित्व समाज के विभिन्न वस्तुओं एवं संस्थाओं का अस्तित्व तथा जीवन के आकार स्वरूप में यह सभी संस्कृति से संबंधित होते हैं और संस्कृति के निर्माण में इनका और इनके निर्माण में संस्कृति का पारस्परिक सहयोग और प्रभाव होता है।[4] शिक्षा का व्यावसायीकरण व बाजारीकरण हो जाने से शिक्षा की गुणवत्ता में कमी आई है। शिक्षा का स्तर गिरता चला जा रहा है शिक्षा के मूल्यों का ह्रास हो रहा है, शिक्षा के व्यावसायीकरण से समाज में असंतोष बढ़ रहा है समाज में अनेक विसंगतियां उत्पन्न हो रही हैं। अतः शिक्षा में व्याप्त

व्यावसायीकरण की समस्या से निजात पाना समाज की आवश्यकता बन गई है। अगर इसी तरह समाज का व्यावसायीकरण और बाजारीकरण बढ़ता रहा तो समाज और देश का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है। शिक्षा का व्यावसायीकरण देश की प्रगति में बाधा है इसलिए समस्या पर विचार करना समय की मांग है। समय रहते हुए यदि इस समस्या पर विचार नहीं किया गया तो इसके परिणाम भयावह हो सकते हैं।

शिक्षा का व्यावसायीकरण की समस्या को रोकने में सरकार पूरी तरह असफल नजर आ रही है या तो सरकार द्वारा बनाई गई नीतियां सफल नहीं हो पा रही हैं या उसका प्रशासन द्वारा सही ढंग से क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है । सरकार को इस समस्या के निवारण के लिए भगीरथ प्रयास करना होगा सरकार को ऐसे कालेजों को मान्यता रद्द कर देनी चाहिए जो निर्धारित मानक पर आधारित नहीं है और पैसों पर डिग्रियां बांट रहे हैं सरकार को जनता में जागरूकता फैलानी चाहिए शिक्षा की उपयोगिता और महत्व को बताया जाए संचार माध्यमों से जनमानस को जागरूक किया जाए। ऐसी स्थिति में हमें उम्मीद को बचाए रखना है अन्न के दाने का बीज में बदलना ही तो उम्मीद की सबसे बड़ी पहचान है ऐसे ही हमारे समाज में भी है । [5] इसीलिए व्यावसायीकरण के दिक्कत्तों से निकलने का रास्ता भी हमें ही खोजना होगा।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा गया है कि शिक्षा का व्यावसायीकरण वर्तमान भारतीय समाज की एक गंभीर समस्या है, जिसके कारण शिक्षा के स्तर में गिरावट आई है गुणवत्ता में कमी तथा मूल्यों का ह्रास हुआ है। अतः इस सामाजिक समस्या को दूर करने के लिए सरकार के साथ–साथ समाज के युवा वर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग को भी प्रयास करना चाहिए । सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों के क्रियान्वयन में सहयोग करना चाहिए तभी इस सामाजिक समस्या से निजात पाया जा सकता है।

संदर्भ–

1. पाण्डेय राम शकल **''शिक्षा दर्शन'',** अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा चौदहवां संस्करण 2014–15, पृष्ठ 30

2. श्रीवास्तव शिवम , पाल एस के, गुप्ता लक्ष्मीनारायण **: ''शिक्षा के मूल सिद्धांत''** न्यू कैलाश प्रकाशन इलाहाबाद 2014–15, पृष्ठ– 14

3. **"** नैतिक आदर्श ऐसा हो जो साधना में सहायक बन सके **"** – श्री श्री आनंदमूर्ति नवभारत टाइम्स कानपुर **(**कानपुर/लखनऊ में एक साथ प्रकाशित 16 दिसंबर 2020**)**, पृष्ठ संख्या 6

4. श्रीवास्तव शिवम्,पाल एस.के. , गुप्त लक्ष्मीनारायण : **''शिक्षा के मूल सिद्धांत''** न्यू कैलाश प्रकाशन इलाहाबाद 2014 15 पृष्ठ संख्या 279 – 280

5 . **''उम्मीद का जिन्दा रहना जीवन की असल पहचान है।** '' हफीज किदवई नवभारत टाइम्स कानपुर (.कानपुर / लखनऊ से एक साथ प्रकाशित) 15 दिसम्बर 2020'

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 16, Jan-June. 2020 ISSN : 2249-7331

जीव मण्डल एवं भारत में वायु प्रदूषण

डॉ0 खेदू राम यादव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–भूगोल,
जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी0जी0 कालेज, महराजगंज

जीव मण्डल सामान्य रूप से पृथ्वी के सतह के चारो ओर व्याप्त एक आवरण है जिसके अंतर्गत पौधों तथा जन्तुओं का जीवन बिना किसी रक्षक साधन के संभव होता है। दूसरे शब्दों में जीव मण्डल पृथ्वी का वह भाग है जिसमें जीवित जीव होते है। जीव मण्डल के इस आवरण का संघटन (Composition) सामान्य रूप से तीस किलोमीटर से कम मोटी वायु, जल, स्थल, मिट्टी तथा शैल की पतली परत से होता है। जीव मण्डल के ऊपरी परत का निर्धारण ऑक्सीजन, नमीं, तापमान तथा वायुदाव की सुलभता के आधार पर किया जाता है, इस आधार पर जीव मण्डल की ऊपरी सीमा अधिक ऊँचाई तक संभव नहीं हो पाती है। यद्यपि वायुमंडल में 15 किमी0 की ऊँचाई तक बैक्टीरिया की उपस्थिति का नासा द्वारा पता चला है, परन्तु वायुमण्डल के मात्र उस निचले भाग में ही जीव अधिक पाये जाते हैं जहाँ पर उनके विकास एवं संवर्धन के लिए पर्यावरणीय दशाए अनुकूल होती है। इसकी निचली सीमा ऑक्सीजन तथा सूर्यप्रकाश की सुलभता तथा प्राप्यता द्वारा निर्धारित होती है। जबकि ज्ञात है कि जीवों के पनपने के लिए पर्याप्त ऑक्सीजन और सूर्यप्रकाश की आवश्यकता होती है। लांसेट मेडिकल जर्नल में प्रकाशित अध्ययन के मुताबिक वर्ष 2019 में हुए कुल मौतों में 18 फीसदी वायु प्रदूषण के कारण हुई, इतना ही नहीं वर्ष 1990 से 2019 तक 20 साल की स्थिति देखें तो घरों के प्रदूषण में 64 फीसदी की गिरावट हुई है, लेकिन घरों से बाहर वायु प्रदूषण में 115 फीसदी की बढ़ोत्तरी हुई है। दिल्ली में प्रदूषण का स्तर साल के 12 महीनें सबसे ज्यादे देखनें को मिलता है। ग्लोबल बर्डन ऑफ डिज़ीज स्टड़ी–2019 के मुताबिक भारत में 16.7 लाख लोगों की मौत के पीछे वायु प्रदूषण एक कारण रहा है। यह आँकड़ा देश में हुई कुल मौतों का 17.8 फीसदी है। देश में 6.1 लाख लोगों की मौत में घर का प्रदूषण भी एक कारण रहा है। वहीं 9.8 लाख लोगों की मौत के लिए बाहरी वातावरण में मौजूद प्रदूषित कण जिम्मेदार है। अब ऐसा माना जा रहा है कि प्रधानमंत्री का उज्जवला योजना का असर दिखाई देने लगा है, क्योंकि पिछले 20 वर्षों में घरों में प्रदूषण 64 फीसदी कम हुआ है। लेकिन बाहरी वायु प्रदूषण के चलते वर्ष 2019 में सबसे ज्यादा 32.5 फीसदी मौतें गंभीर श्वसन रोगों की वजह से हुई है। 29.2 फीसदी मौते हार्ट अटैक से हुई है। 16.2 फीसदी मौतें स्ट्रोक, 11.2 फीसदी मौतें निम्न श्वसन संक्रमण, 5.2 फीसदी नवजात शिशुरोग, 3.8 फीसदी मधुमेह, 1.7 फीसदी लोगों की मौत फेफड़ों में कैंसर होने के पीछे भी वायु प्रदूषण के PM 2.5 कण सबसे बड़ी वजह माने जाते है। देखा जाय तो धुंध भी एक तरह का वायु प्रदूषण है जो दृश्यता को कम कर देती है। धुंध की समस्या उन क्षेत्रों में अधिक होती है जहाँ धुआँ पैदा करने वाले कारखाने लगे है। शहरों में यह समस्या इसलिए अधिक होती है, क्योंकि वहाँ औद्योगिक काम अधिक होता है। वहाँ फैक्ट्रियों, गाड़ियों से निकलने वाला धुआँ जहरीले कण, राख आदि जब कोहरे के सम्पर्क में आते है तब धुन्ध बनाते है। जैसे दिल्ली में आड–इवेन और हेल्थ इमरजेन्सी, पंजाव और हरियाणा में पराली का जलना आदि, इस तरह प्रदूषण के साथ–साथ लोगों को धुंध की समस्या से भी लड़ना पड़ता है, जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक है।

भारत के अधिकांश शहरो में प्रदूषित वायु के कारण मानव स्वास्थ्य एवं जीव मण्डल को भारी नुकसान होता है, इन तमाम समस्याओं को देखते हुए भारत सरकार इस वर्ष राष्ट्रीय स्वच्छ हवा कार्यक्रम (NCAP) की शुरूआत की है जिसका लक्ष्य 2024 तक PM. 2.5 और PM 10 के स्तर को 20–30 फीसदी कम करना केन्द्रीय पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने विभिन्न एकादमिक संस्थाओं तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोणों को साथ लेकर NCAP के लक्ष्य को हासिल करने के लिए प्रयास शुरू किये हैं, लेकिन वायु प्रदूषण के इस विकराल रूप को सिर्फ एजेंसियों के माध्यम से खत्म नहीं किया जा सकता है। भारत में वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए राज्यों के साथ ताल–मेल भी जरूरी है। क्योंकि वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए रणनीति तैयार करने में इन राज्यों की विशेष भूमिका होनी चाहिए। गाँव से लेकर शहरों तक प्रशिक्षण के माध्यम से आम आदमी को जागरुक करने की जरूरत है, जिससे समाज में जीव मण्डल के प्रति सजगता बढ़ाने में मदद मिले, क्योंकि तमाम प्रयासों के बाद भी आज भारत के कुछ राज्यों में घर का प्रदूषण अब भी ज्यादा है, जैसे–बिहार, मध्य प्रदेश, असम, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और अरुणाँचल प्रदेश में घरों के अन्दर प्रदूषण सबसे ज्यादा है। जब तक पूरे देश में घरों के प्रदूषण को कम नहीं किया जायेगा तब तक बाहर के प्रदूषण पर नियंत्रण पाना संभव नहीं है। गाँव के गरीब मजदूर किसान की बहू–बेटियाँ घर के प्रदूषण से ही अत्यधिक प्रभावित होती है, जिसका प्रमुख कारण अशिक्षा, गरीबी, जागरुकता का अभाव आदि है, जिसके लिए जरूरी है कि गाँव स्तर पर कैम्प लगाकर प्रदूषक तत्वों के विषैलेपन तथा उनके दीर्घकालिक दुष्परिणामों की जानकारी देना तथा उनको अपनी सुरक्षा, समाज की सुरक्षा तथा देश की पर्यावरणीय सुरक्षा में उनकी क्या भूमिका है, इसका आभास कराना जिससे लगे कि समाज का हर व्यक्ति कहीं न कहीं से वायु को प्रदूषित करता है। चाहे वह पराली जलाने के रूप में हो, चाहे वह भोजन बनाने की लकड़ी के रूप में हो, चाहे अनायास मोटरबाईक चलाने के रूप में हो या एरोप्लेन जेट विमाान से निकलने वाले धुएँ वायुमण्डल में ही जाते है, और वायुमण्डल को समान रूप से प्रदूषित करते हैं और यह प्रदूषित वायु समान रूप से मानव समाज को नष्ट करने का कार्य करता है, जिसका ताजा उदाहरण पंजाब, हरियाणा का पराली दिल्ली सहित सम्पूर्ण उत्तर भारत को धुंध के रूप में प्रभावित किया। चूँकि मानव जीव मण्डल का मुखिया है, अतः इसकी सुरक्षा से ही जीव मण्डल की कल्पना की जा सकती है।

स्रोत :–

1– पर्यावरण भूगोल – सविन्द्र सिंह – Pg. No-80

2– अमर उजाला – देश–विदेश – 23/12/2020 Pg. No-11

3– अमर उजाला – 17/11/2019 Pg. No-16